THE BOOK WAS DRENCHED

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186286

UNIVERSAL
LIBRARY

नये जीवन की ओर

–बाल तथा नारी-कल्याण-संबंधी प्रवृत्तियों का सिंहावलोकन–

लेखक

शिवचंद्र दत्ता

विमला दत्ता

१९५९

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

यूनेस्को के सहयोग से

पहली बार : १९५९
मूल्य :
एक रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
(दि टाइम्स ऑफ इंडिया प्रेस),
१० दरियागंज दिल्ली

प्रकाशकीय

किसी भी देश की सबसे मूल्यवान संपति वहां के निवासी होते हैं। बिना देशवासियों के उत्थान के किसी भी राष्ट्र का, भले ही वह छोटा हो या बड़ा, अभ्युदय संभव नहीं ह। आजादी के बाद से हमारे देश में सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर जो योजनाएं चल रही हैं, उनका अंतिम लक्ष्य यहां के कोटि-कोटि निवासियों का हित-साधन ही है।

प्रस्तुत पुस्तक में बताया गया है कि बच्चों तथा स्त्रियों के लाभ के लिए, विशेषकर उन बच्चों और स्त्रियों के लिए, जो शारीरिक दृष्टि से असमर्थ और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित हैं, विभिन्न स्थानों पर क्या-क्या काम हो रहा है और उनके जीवन को उपयोगी और स्वावलंबी बनाने के लिए क्या-क्या उपाय किये जा रहे हैं।

वस्तुतः यह समस्या बड़ी ही व्यापक है, क्योंकि वह करोड़ों व्यक्तियों के जीवन से संबंधित है। उसे हल करने के लिए भगीरथ-प्रयत्न की आवश्यकता है। इस दिशा में अबतक जो काम हुआ है और हो रहा है, उसका अपना महत्व है ; लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि जबतक जन-सामान्य का सहयोग नहीं मिलेगा, वह पूरी तरह से पार नहीं पड़ सकेगा।

इस पुस्तक की सामग्री से पता चलता है कि इस कार्य का कितना महत्त्व ह और कितनी उसकी आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर इस काम के प्रति लोक-रुचि को जाग्रत करने में सहायता मिलेगी।

—मंत्री

विषय-सूची

		पृष्ठ
१.	शिशु-गृह	५
२.	बाल-गृह	१४
३.	बच्चों का पार्क	२१
४.	पाठशाला	२९
५.	अनाथाश्रम	४३
६.	बाल-सुधार-गृह	४८
७.	विकलांगों का स्कूल	६२
८.	अंध-विद्यालय	६९
९.	गूंगे बहरों का स्कूल	७५
१०.	परित्यक्त शिशु-गृह	८०
११.	अविवाहित माता-गृह	८६
१२.	नारी-निकेतन	९२
१३.	उपसंहार	१००

नये जीवन की ओर

: १ :

शिशु-गृह

उस दिन जब मैं दफ्तर जाने के लिए पड़ोसिन के यहां घर की चाबी देने गई तो देखा, शांति बहुत झुंझलाई हुई थी। कुछ परेशान-सी भी थी। मुझे दफ्तर को देर हो रही थी, फिर भी पड़ोसिन से हैरानी का कारण पूछे बिना न रह सकी। "क्यों शांति क्या बात है? मुन्ना रो रहा है, तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है! क्या तबीयत ठीक नहीं है?"

शांति की आंखों में आंसू छलक आये। बड़ी कठिनाई से उन्हें रोकती हुई बोली, "क्या करूं बहन, वे दौरे पर गये हुए हैं। नौकर एक महीने की छुट्टी पर है। नया आदमी ठीक मिला नहीं। माताजी को रात से बड़े जोर का बुखार चढ़ा हुआ है। सारी रात उनके हाथ-पांव दबाती रही। अब डाक्टर से दवा लानी है। घर का काम करना है। छोटा मुन्ना रोए चला जा रहा है। उसे नौकर ने गोदी की इतनी आदत डाल दी कि जान मुसीबत में आ गई है। उधर मुन्नी कभी रसोई में घुस जाती है तो डर लगता है कि कहीं अंगीठी न गिरा दे। वहां से भगाती हूं तो नल खोल-कर सारे कपड़े भिगो लेती है। वहां से हटाकर कपड़े बदलती हूं तो बाहर गली में भाग जाती है। दिल कांपता रहता है कि कहीं

वह साइकिल के नीचे न आ जाये, कोई गाय सींग न मार दे। क्या करूं ? बच्चे न हो गये, एक मुसीबत हो गई ?"

कहते-कहते शांति के गालों पर आंसू ढुलक आये। अंदर से माताजी के कराहने की आवाज़ सुनाई दी। शांति ने मुन्ने को गोदी में लेकर हिलाना शुरू किया तो रसोई से सब्जी जल जाने की बास आने लगी। मैंने झपटकर चूल्हे पर से सब्जी उतारी। वापस घर जाकर ताला खोला। दफ्तर को फोन किया कि दो घंटे देर से आऊंगी। फिर शांति के पास गई, बच्चे को अपनी गोद में लिया और कहा--

"आखिर मैं तो दूर नहीं थी। सवेरे जरा मुझे आवाज लगा देतीं ! वे ही माताजी की दवा ला देते। पड़ोसियों को इतना पराया तो मत समझा करो। मैं मुन्ने-मुन्नी को संभालती हूं। तुम जल्दी से काम निबटाकर तैयार हो जाओ, फिर आज तुम्हें शिशु-घर ले चलूंगी।"

"शिशु-घर ? वह क्या है ? कहां है ? उसमें क्या होता है ? मुझे मरने की भी फुर्सत नहीं है। तुम मुझे इधर-उधर ले जाने की सोच रही हो !"

मुझे उसके इस भोलेपन पर हँसी आ गई। मैंने कहा, "घबराओ नहीं। मैं इस समय तुम्हें सैर-सपाटा कराने की नहीं सोच रही। तुम्हारे भले की ही सोच रही हूं, जिससे ये प्यारे-प्यारे नन्हें-मुन्हें तुम्हारे लिए मुसीबत न बनकर आनंद और सुख की चीज बनें। आजकल ऐसे बहुत-से शिशुगृह खुल गये हैं, जहां माताएं जरूरत पड़ने पर अपनी सुविधा के लिए बच्चों को छोड़ आती हैं।"

"अच्छा ! वहां क्या होता है ?" शांति ने अचरज से पूछा।

मैंने जवाब दिया, "वहां शिशुओं को रखा जाता है। तुम जब चाहो अपना बच्चा वहां छोड़ आओ और काम निबटा कर जब चाहो, बच्चे को वहां से ले आओ। जैसे आज तुम्हें घर में इतना काम है—डाक्टर के जाना है, पता नहीं वहां कितनी देर बैठना पड़ जाय, फिर बाजार का भी काम है—तो तुम बड़े आराम से इस छोटे मुन्ने को वहां छोड़ सकती हो।"

शांति ने कहा, "यह सब तुम क्या कह रही हो ! गोदी के दूध-पीते बच्चे को मां के सिवा कोई कैसे रख सकता है ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारा मतलब बड़े बच्चों से होगा।"

"नहीं, मेरा मतलब गोद के दूध-पीते बच्चों से ही है। एक मास से लेकर दो-ढाई साल तक के बच्चे।"

आश्चर्य से शांति मेरी ओर देखती रह गई। बोली, "विश्वास नहीं होता।"

"हाथ कंगन को आरसी क्या ?" मैंने कहा, "तो चलो, आज चलकर सबकुछ अपनी आंखों से देख लो।"

"वहां बच्चों के सोने और कपड़ों का क्या होता है ?" शांति ने पूछा।

मैंने बताया, "वहां छः महीने तक के बच्चों के लिए सोने और खेलने के लिए पालने और बिछौने हैं। घुटनों चलनेवाले या इससे बड़े बच्चे नीचे दरी पर चलते-फिरते, खेलते-कूदते और गिरते-पड़ते हैं। शिशु-गृह में तुमसे अच्छी देखभाल होती है। तुम्हारे घर में धूप नहीं आती, पर शिशु-गृह ऐसे घरों में बसाया जाता है, जहां खुली हवा और धूप हो।"

शांति—"ये सब सुविधाएं तो हम बच्चों को दे ही नहीं पाते।"

मैं--"बहन, तुम क्या, बहुतों के यहां यही हाल है। तभी तो, आजकल शहर के बच्चे खुली हवा और धूप की कमी के कारण तंदुरुस्त नहीं रह पाते।"

शांति--"क्या वहां बच्चों के लिए खेल-खिलौने भी होते हैं?"

मैं--"क्यों नहीं। खिलौने सब प्रकार के होते हैं। बच्चा नये-

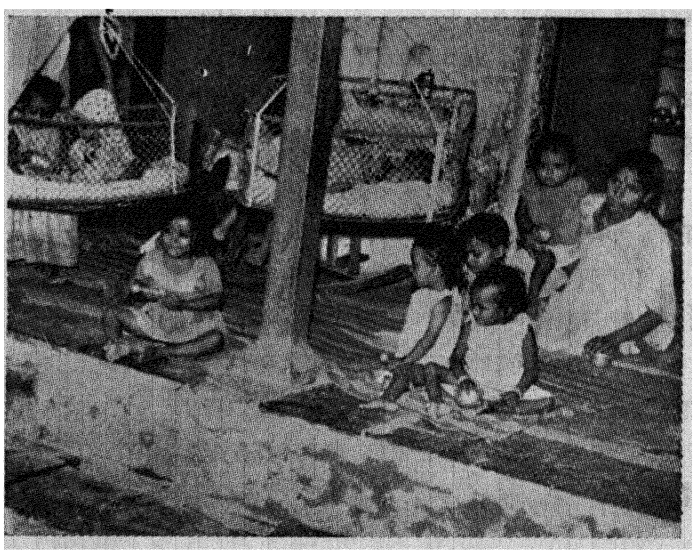

छः महीने तक के बच्चे पालनों में तथा घुटनों चलने वाले बच्चे दरियों पर खेलते हुए।

नये खिलौने देखकर झट बहल जाता है।" वहां झूलनेवाला घोड़ा, साइकिल, चाबीवाले खिलौने, कई रंगोंवाले मोतियों की लड़ियां, बड़े-छोटे गिलास। इससे बच्चे का मन खूब लगा रहता है। खेल-खेल में बड़ी-छोटी चीजों में भेद करना सीख जाता है, भिन्न-भिन्न रंगों को पहचान जाता है।

कुछ-कुछ गिनती की धारणा भी हो जाती है।"

शांति--"लेकिन बहन ! इन खिलौनों का लाभ तो बड़े बच्चे ही उठा पाते होंगे।"

मैं--"हां, इस प्रकार के खिलौने दो-ढाई साल के बच्चों के लिए अधिक उपयोगी होते हैं। छोटे बच्चे तो इनके रंगों से ही आकर्षित होकर इन्हें हाथ में उठाकर खुश हो जाते हैं। मुंह से काटते हैं और किलकारियां मारते हैं। उनसे भी छोटी आयु के बच्चों के लिए भिन्न-भिन्न रंगों के रबड़ और प्लास्टिक के तरह-तरह के झुनझुने, जानवर इत्यादि होते हैं।"

शांति--"बहन, इतने खिलौने जुटानेभर पैसा तो हमारे पास उमरभर नहीं होंगे। हमारे बच्चे तो हमेशा ललचाये-ललचाये ही रहते हैं। अच्छा एक बात और बताओ। अगर बच्चा टट्टी-पेशाब कर दे तो ?"

मैं--"कर दे तो क्या हुआ ? बच्चों का तो काम ही है यह। जो बच्चे पालता है, वह इसका भी प्रबंध करता है, कोई उन्हें गंदे थोड़े ही छोड़ दिया जाता है। आया तत्काल उनके कपड़े बदलकर धो देती है।"

शांति--"बच्चों को भूख लगे तो ?"

मैं--"उसके लिए दूध और बिस्कुट की व्यवस्था रहती है।"

शांति--"वहां का दूध, पता नहीं, कैसा हो ?"

मैं--"तुम अपने घर का दूध भी दे सकती हो। समय होने पर वे उसे गर्म करके पिला देंगे। यदि वहीं का दूध पिलवाओगी तो वे दूध के अलग पैसे ले लेंगे।"

शांति--"क्यों बहन, इस देखभाल के लिए वे कुछ लेते भी तो होंगे ?"

मैं--"वे घंटे के हिसाब से कुछ लेते हैं। कहीं कम, कहीं ज्यादा। पर सरकारी, और नगरपालिका की ओर से खोले हुए शिशु-गृहों में बहुत कम खर्च आता है।"

शांति—"यदि किसी बच्चे के पेट में दर्द हो जाय या दस्त लग जायं तो ?"

मैं—"उसके लिए वहां डाक्टर और नर्स का भी प्रबंध होता है। बीमार बच्चे की डाक्टर भली प्रकार जांच कर लेता है। औषधि बताता है, और यदि कोई बच्चा कमजोर हो तो उसे शक्तिवर्द्धक औषधि भी देता है। नर्स समय पर औषधि दे देती है। अब बताओ, तुम्हें इससे अधिक और क्या चाहिए ?"

यह सब सुनकर शांति का चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा। बोली, "वाह हमारे देश में अब इतना सब होने लगा। कितने आनंद की बात है। तब तो मैं जरूर छोटे मुन्ने को शिशु-गृह में छोड़ आऊंगी।"

इतने में भीतर से झिड़कते हुए आवाज आई, "हां-हां, जब मेरी अरथी निकल जाय तभी इन दुधमुहें बच्चों को बाहर छोड़ियो। जबतक मैं जिंदा हूं तबतक तो तू इन्हें कहीं ले नहीं जा सकती। यहां मां का प्यार छोड़कर वे उन भंगिनों के हाथ पड़ेंगे। तेरी अकल ऐसी क्यों मारी गई कि जो उसने कह दिया वही तूने मान लिया। वह सारे दिन उड़ी-उड़ी फिरे है, इसीलिए तुझे भी उड़ाना चाहती है। मां का फरज तू क्यों टालना चाहवे है।"

यह आवाज सास की थी। उसे सुनकर शांति की सिट्टी गुम हो गई। वह तो सोच रही थी कि बच्चे को शिशु-गृह में डाल देने से उसे कुछ राहत मिल जायगी; लेकिन सास का जब ऐसा रुख है तो वह कैसे संभव होगा। उसने बड़ी कातर

दृष्टि से मेरी ओर देखा, मानों सहारा चाहती हो। मैंने माताजी के पास जाकर हँसकर कहा, "क्या हो गया, माताजी ? जरा सोचो तो कि बेचारी शांति अकेले क्या-क्या करेगी ? पहले तो तुम भी बराबर काम में हाथ बंटाया करती थीं। अब तुम्हारे हिस्से के काम के साथ-साथ तुम्हारी सेवा और डाक्टर के चक्कर उसके सिर और आ गये हैं।"

इतना कहकर मैंने धीरे-धीरे माताजी के पांव दबाना शुरू कर दिया। मेरे इस व्यवहार से उनका स्वर कुछ नरम पड़ गया। बोलीं—"मुझे नहीं चाहिए दवाई-ववाई। मैं वैसे ही ठीक हो जाऊंगी, पर तू ही सोच, भला मां जैसा प्यार और कोई दे सकता है ? यहां तो मां का प्यार पाकर ही बच्चे फूलकर कुप्पा हो जाते हैं। इसी प्रकार हमारे बाप-दादा पले। इसी प्रकार हम पले और इसी प्रकार हमने अपने बच्चे पाले। पर यह नये जमाने की हवा हमें तो कुछ जंची नहीं कि पैदा कर-करके बच्चे दूसरों के सिर डाल दिये जायं।"

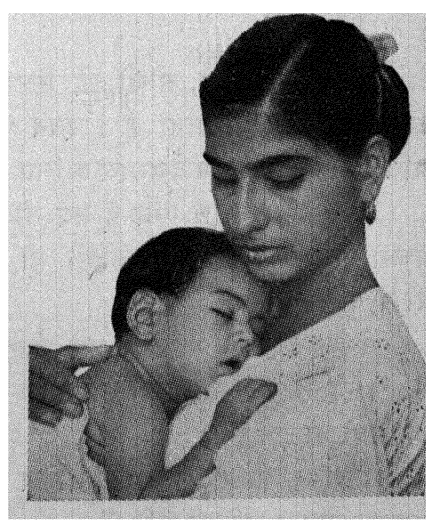

ममता हर स्त्री के हृदय में भरी होती है।

मैं—"लेकिन मां-जी, हम तो तुम्हें बिना दवा के नहीं छोड़ सकते जमाना बड़ी तेजी बदल रहा है। जो जमाने के साथ नहीं चलेगा, वह

पीछे रह जायगा, दुःख पायगा। तुम मा की ममता की बात करती हो। वह हर स्त्री के हृदय में भरी रहती है। हृदय तो सभी स्त्रियों का कोमल होता है। प्रकृति ने ही उनमें ममता और माया भरकर भेजा है। फिर एक बात और भी है, मांजी।"

मांजी—"वह क्या ?"

मैं—"आजकल ऐसे-ऐसे स्कूल खुले हुए है जहां स्त्रियों को शिशु-पालन की शिक्षा दी जाती है, जैसे एक बंगलौर में है।

"इन कक्षाओं में स्त्रियों को यह और अच्छी तरह सिखा देते हैं कि बच्चों को कैसे प्यार से और खेल-खिलौनों से बस में किया जाता है। किस तरह उन्हें नहलाया जाता है, कैसा कपड़ा पहनाया जाता है और छोटी-मोटी बीमारियों में क्या किया जाता है।"

मांजी—"सचमुच ? क्या यो बातें भी आजकल पढ़ाई जावें हैं ?"

मैं—"हां, मांजी, सीखी हुई स्त्रियों को इन शिशुगृहों में काम पर लगा दिया जाता है। इतने पर भी उनके ऊपर के अधिकारी बीच-बीच में देखभाल के लिए आते-जाते रहते हैं।"

मांजी—"अच्छा, ऐसा है तब तो सच्ची वहां बच्चों का अच्छा प्रबंध होगा। जब मैं अच्छी हो जाऊं तो एक दिन मुझे भी ले चलियो वहां।"

मैं—"जरूर मांजी। जब सबकुछ अपनी आंख से देख लोगी तो तुम्हें संतोष हो जायगा। अच्छा, अब तो शांति को लिवा जाऊं न ?"

मांजो—"हां-हां, ले जाओ, लेकिन एक दिन मुझे भी जरूर दिखाना होगा। भूलियो नहीं।"

मैं---"नहीं-नही, मांजी, भला यह भी कोई भूलने की बात है। अच्छा शांति, तैयार हो न।"

शांति--"हां, तैयार हूं।

मैं और शांति शिशु-गृह में जाकर वहां का सारा प्रबंध देख आये। शांति वहां के तौर-तरीकों से, मुस्कराती सफ़ेदपोश नर्सों से, चमचमाते कमरों से, खेल-खिलौनों, पालनों से खाने के प्रबंध से अत्यंत संतुष्ट हुई।

: २ :

बाल-गृह

दूसरे दिन सवेरे ही शांति ने सबसे पहला काम यह किया कि मुन्ने के कपड़े और दूध साथ लेकर उसे शिशु-गृह छोड़ आई, ताकि बाकी काम शांति से कर सके। पिछले दिन उसे अनुभव हो गया था कि जितनी अच्छी और सुंदर देखभाल उसके मुन्ने की वहां हो सकती है, ऐसी वह स्वयं नहीं कर सकती। उसने निश्चय किया कि अब वह रोज मुन्ने को वहीं छोड़ आया करेगी। अब मुन्नी की कुछ व्यवस्था करनी थी। इसलिए मैंने जल्दी ही उसे बाल-गृह ले जाने का कार्यक्रम बनाया।

जब हम बाल-गृह पहुंचे तो वहां की संचालिका ने मधुर मुस्कान के साथ हमारा स्वागत किया। हमने उनसे अपना बाल-गृह दिखाने की प्रार्थना की। उन्होंने बड़ी नम्रता से उसे स्वीकार कर लिया। हमने अंदर प्रवेश किया तो चारों ओर की हरियाली और फूलों की सुगंध से जी प्रसन्न हो गया। बाग में बच्चों के खेलने के लिए काफी खुली जगह थी। वहां कुछ बच्चे झूले पर सवार थे, एक नर्स उन्हें धीरे-धीरे झोंटे दे रही थी। कुछ **सी सा** (Sea-saw) पर चढ़े हुए थे और ऊपर-नीचे होकर आनंद ले रहे थे। कुछ सीढ़ियों से फिसलनी पर चढ़कर टीन के टेढ़े तथा फिसलने रास्ते से नीचे की ओर सरक रहे थे। नीचे रेत की कुंड थी। इसलिए सरपटे से नीचे आने में उन्हें किसी प्रकार की चोट नहीं लग सकती थी। अभ्यास हो जाने से उनमें आत्म-विश्वास पैदा हो गया था।

इसलिए वे निडर होकर बार-बार ऊपर चढ़ते थे और नीचे फिसल जाते थे। कुछ एक चक्कर पर पांव का तनिक जोर लगाते ही ऊपर चढ़ जाते थे, उनके पांव के जोर से चक्कर घूमने लगता था और वे आनंद से किलकारियां मारने लगते थे। वहां इसी प्रकार के और भी बहुत-से खेल थे। बच्चों को किसीकी देखभाल की आवश्यकता न थी। वे अपने आप ललचाई आंखों से खेलों की ओर भागते और झट खेलने लगते। शांति की मुन्नी ने दूसरे बच्चों को खेलते देखा तो उसकी उंगली छोड़कर भागने का प्रयास करने लगी, पर शांति बोली, "नहीं बेटी, गिर जायगी।"

नर्स ने मुस्कराकर कहा, "छोड़ दीजिये बहनजी, उसे। चोट-वोट कुछ नहीं आ सकती।"

यह कहकर नर्स ने उसे ले जाकर एक डोलनेवाली कुर्सी पर बिठा दिया और एक दूसरे बच्चे को उसके सामनेवाली कुर्सी पर। फिर हाथ से एक कुर्सी को जरा-सा नीचे को दबा दिया। झट कुर्सियां ऊपर-नीचे होने लगीं। फिर क्या था, मुन्नी उसपर से उतारे नहीं उतरती थी।

मैंने कहा—"शांति, इसे खेलने दो। हम जाकर बाकी की और चीजें देख लें। तबतक यह खेल में लगी रही तो तुम इसे आज ही यहां दाखिल करा देना।"

शांति ने उसे झिझकते हुए छोड़ तो दिया, पर बार-बार मुड़-मुड़कर उसे देखने लगी। लेकिन मुन्नी को अपनी मां की जरा भी चिंता न थी। वह तो खेलों में खो गई थी।

बाग के दूसरे कोने में एक नर्स बच्चों को कतार में खड़ा करके दौड़ लगवा रही थी। कुछ बच्चे खड़े होकर ड्रिल कर रहे थे। उनमें जो सबसे बड़ा था, वह सामने खडा होकर डिल के आदेश दे रहा था।

वहां से आगे बढ़े तो एक कक्ष में बच्चे गिनती बोल रहे थे। सबके हाथों में सौ-सौ दानों की एक-एक माला थी। एक-एक रंग के दस-दस दाने थे। बच्चे गिनती बोलते जाते और हर संख्या पर एक दाना खिसकाते जाते थे। उन्हें यह अनुभव नहीं हो रहा था कि उन्हें गिनती सिखाई जा रही है, पर मुंह के बोल के साथ-साथ दाने के ऊपर हाथ जो चलता था, उससे उन्हें एक विचित्र ताल का आभास होता और इस ताल के जोर से उनकी जिह्वा और हाथ स्वतः ही चल रहे थे। हर दस गोलियों के पश्चात गोलियों का रंग पलट जाने से नयापन मालूम होता, आगे बढ़ने की खुशी होती। गिनती रटने में मस्तिष्क पर जो जोर पड़ता है, वह तो पड़ ही नहीं

बच्चे व्यायाम करते हुए

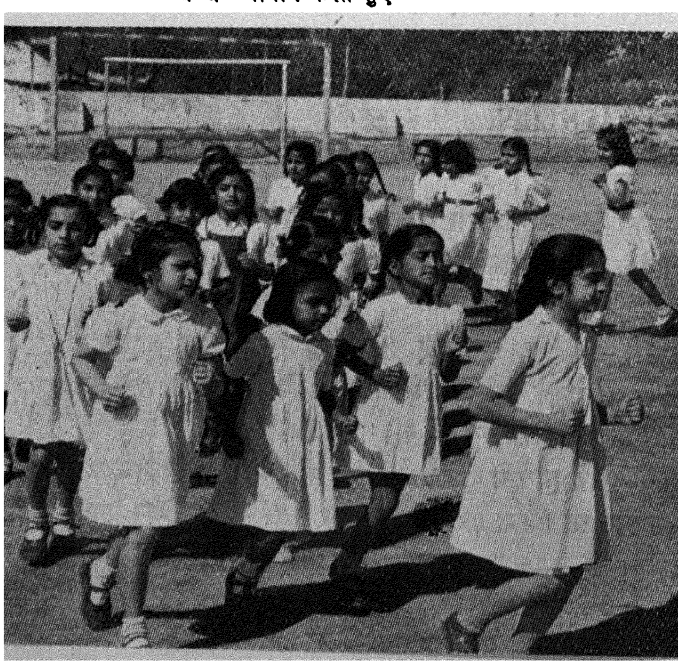

रहा था, उल्टे आनद आ रहा था। वहां कक्षा में इन मालाओं के अतिरिक्त गिनती याद करने के और भी कई खेल रखे थे।

वहां से हम दूसरी कक्षा में गये। इस कक्षा में बच्चे तरह-तरह के रंग-बिरंगे प्लासटिक, लकड़ी, रबड़ इत्यादि के खिलौनों से खेल रहे थे। कोई प्लासटिक लेकर तरह-तरह की आकृतियां बना रहा था, कोई लकड़ी के टुकड़ों से तस्वीरें बना रहा था, कोई लकड़ी के अक्षरों को जोड़-जोड़कर शब्द बना रहा था। इसी तरह सब अपने-अपने खेलों में मगन थे।

अगले कक्ष में कुछ बच्चे एक शिक्षिका के पीछे-पीछे एक कविता गा रहे थे। गाते जाते और हाथ और मुंह से संकेत करते जाते। शिक्षिका की नकल करने में उन्हें बड़ा मजा आ रहा था।

इतने में घंटी बजी और सब बच्चे अपने-अपने स्थान में पलथी मारकर बैठ गये। एक आया एक ट्रे में बहुत-से दूध के गिलास ले आई। एक दूसरी आया बहुत-सी तश्तरियां ले आई, जिनमें केले और बिस्कुट रखे थे। शिक्षिका ने एक-एक गिलास दूध और केला हर बच्चे को दे दिया। सब बच्चों ने केले खा-खाकर छिलके उसी तश्तरी में रख दिये और अपने-आप उठ-उठकर खाली गिलास और तश्तरी ट्रे में रख आये।

हम वहां से बाहर आ गये। देखा, शिक्षिका मुन्नी का हाथ पकड़े हमारी ओर ही आ रही थी। और बच्चों के साथ उसे भी दूध और केला मिल गया था। पेट भर जाने से वह बड़ी खुश थी और केले को कसकर हाथ में पकड़े हुए थी। अपनी मां को देखते ही बोली, "मां, देतो तेला।"

शांति को आशा न थी कि उसकी मुन्नी उसके बिना इतनी देर तक रह जायगी। अब जब उसको हँसते पाया तो उसे आज ही

दाखिल कराने का विचार किया। अतः हम संचालिका के कक्ष की ओर बढ़े। मार्ग में देखा, एक आया छोटे-छोटे बच्चों को टट्टी-

शिक्षिका की नकल करने में बच्चे बड़े कुशल होते हैं

पेशाब करवाने एक कोने में ले जा रही थी। कुछ बच्चियां अपने आप निवृत्त होकर अपने नाड़े बांध रही थीं। उन्होंने यहां आकर नाड़े बांधना और यथा-स्थान पेशाब करना अच्छी तरह सीख लिया था। जो बच्चे छोटे और नये थे, उनको आया सहायता देती थी।

इतने में हम संचालिका के कक्ष में पहुंच गये। शांति ने उनसे कहा—"क्या मैं एक-दो बातें पूछ सकती हूं?"

संचालिका—"बड़ी खुशी से।"

शांति—"यहां कम-से-कम और अधिक-से-अधिक किस आयु के बालक भर्ती किये जाते हैं?"

संचालिका—"दो वर्ष से लेकर पांच वर्ष तक के। शिशु-गृह की आयु से बड़े और पाठशाला में जाने योग्य आयु से छोटे।"

शांति—"आपके यहां बच्चे को स्वस्थ रखने के लिए क्या-क्या उपाय किये जाते हैं?"

संचालिका—"यहां प्रति मास डाक्टर आकर प्रत्येक बच्चे की जांच करता है, उनका गला, आंख, कान, नाक, पेट देखता है और वजन भी लेता है। जो बच्चे बीमार होते हैं, उन्हें दवाई देता है और जो कमज़ोर होते हैं उन्हें बलवर्द्धक औषधियां देता है। जिस बच्चे को अधिक देखभाल की ज़रूरत होती है, उसे डाक्टर प्रतिदिन देखता है।"

शांति—"यह तो बहुत अच्छा प्रबंध है। खाने के लिए इन्हें प्रतिदिन दूध-केला ही मिलता है या कुछ और भी?"

संचालिका—"हम मौसम का हरेक फल बारी-बारी से बच्चे को खिलाते हैं। इसका खर्चा अंतर्राष्ट्रीय बाल-सहायता कोष से आता है। इसलिए गरीब बच्चों के मां-बाप पर इसका भार नहीं पड़ता।"

शांति—"इसके लिए सामान क्या-क्या लेना होगा?"

संचालिका—"सामान! सब उसे यहीं से मिलेगा।"

शांति—"अच्छा! इसे कितने बजे लाऊं?"

संचालिका—"हमारा बाल-गृह प्रातः ८ बजे से १२ बजे तक लगता है। सिर्फ चार घंटे के लिए। शीत-काल में १० बजे से २ बजे तक।"

शांति—"ठीक है। तो मैं कल ८ बजे इसे यहां छोड़ जाऊंगी।"

× × ×

बाहर आते समय शांति मुझसे बोली, "बहन, तुम्हारी कृपा से बच्चों की इतनी अच्छा व्यवस्था हो गई। अब इतनी देर बाद मुन्नी को शिशुगृह से लाया करूंगी तो घर में रौनक हो जाया करेगी।"

मैं—"जी हां। रौनक तो हो ही जाया करेगी। जब ये बच्चे पांच-छः घंटे तुमसे अलग रहकर मिलेंगे तो मिलने पर तुम्हारा दिल भी प्रसन्न हो उठेगा और उनको भी खुशी होगी। तब बालक तुम्हें मुर्साबत नहीं लगेंगे।"

शांति—"बहन, मोहन को जब मैंने स्कूल में भरती कराया था तो उसने एक महीने तक धरती-आसमान एक कर दिये थे। रोज़ रोता था जाते समय। रोज पिटता था। मुझे बड़ा बुरा लगता था। सवेरा होते ही घर में रोना-पीटना शुरू हो जाता था। पर इन बच्चों को तो देखो। रोने का नाम भी नहीं।"

मैं—"हां शांति, यहां उन्हें खेल-खिलौनों से बहलाया जाता है। इससे उन्हें मां-बाप से अलग रहने की आदत हो जाती है। नर्स, आया और फिर बाद में अध्यापक व अध्यापिकाओं से डर नहीं लगता। पहले से ही गिनती सीखने और अक्षर बनाने का शौक हो जाता है, इसलिए बाद में पढ़ाई से बच्चा भागता नहीं, बल्कि स्कूल न जाने से वह बहुत उदास हो जाता है। अच्छा अब चलें। शाम को भेंट होगी। नमस्ते।"

: ३ :

बच्चों का पार्क

एक दिन शाम को घर लौटी तो देखा गली में खूब तू-तू मैं-मैं हो रही है और ऊंच-नीच कही-सुनी जा रही है। कोई किसी की नहीं सुनतीं, अपनी ही कहती हैं। गोदी के बच्चे अपनी माताओं को इस प्रकार लड़ते देखकर सहम गये और डर के मारे चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। अपनी-अपनी औरतों की सहायता के लिए घर की बाकी औरतें और बच्चे भी निकल आये। सबका शोर मिलकर ऐसा लग रहा था मानों कोई तूफान आ गया हो। मैं दिनभर की थकी, घर आकर भी शांति नहीं। जल्दी-जल्दी चारों ओर के दरवाजे बंद किये, ताकि कान तो फूटने से बचें। कुछ ही देर में गली के मर्द भी दफ्तरों से लौट आये। जो तमाशा देखने बाहर खड़ी थीं, वे उनकी सूरत देखते ही चाय-पानी तैयार करने भीतर भागीं, जो लड़ रही थीं, उनमें से कुछ तो अपने आदमियों की घुड़कियां खाकर ही घर में घुस गईं, कुछको उनके आदमियों ने धक्का मार-मारकर घर में खदेड़ा।

जब सब शोर-शराबा अच्छी तरह से शांत हो गया तो नौकर से पूछने पर मालूम हुआ कि गली में कुछ बच्चे क्रिकेट खेल रहे थे। पतली-सी गली तो है ही, गेंद खिलाड़ियों से चूककर एक की खिड़की में जा लगी। खिड़की का शीशा टूट गया और एक टुकड़ा उछलकर कमरे में बैठी स्त्री की आंख में जा लगा। बस फिर क्या था? उसने आव देखा न ताव। बाहर आकर बच्चों को

पकड़कर ऐसा पीटा कि उन्हें छठी का दूध याद आ गया। मज़ा यह कि उसका अपना बच्चा भी उन खिलाड़ियों में था, पर उसे तो उसने जैसे देखा ही नहीं। पिटनेवाले बच्चे ज़ोर-ज़ोर-से रोने लगे, पर कोई उस स्त्री के चंगुल में था, कोई उसके नौकर के चंगुल में और कोई उसके साहबज़ादे के चंगुल में। बच्चों का रोना-पीटना सुनकर सभी स्त्रियां घरों से निकल आईं और जिस-जिसने अपना बच्चा पिटता देखा वही उस स्त्री पर बरस पड़ी। फिर क्या था? महाभारत छिड़ गया।

हमारी गली में बच्चों के खेलने की सचमुच ही समस्या थी। एक-एक मकान में चार-चार, पांच-पांच फ्लैट, एक-एक फ्लैट में छोटे-छोटे दो-तीन कमरे। हर फ्लैट मे सात-आठ प्राणियों का एक-एक परिवार। हर परिवार में कम-से-कम चार-चार, पांच-पांच बच्चे। किसी भी मकान में इतने बड़े आंगन नहीं कि कई बच्चे मिलकर सामूहिक रूप से खेल सकें। घर के अंदर के इतने खेल किसीके पास नहीं कि बच्चे घर में संतुष्ट रहें। फिर घर में वे शोर भी तो इतना मचाते हैं कि मां-बाप की इच्छा यही बनी रहती है कि वे घर से बाहर जाकर खेलें। कुछ मां-बाप कह देते हैं कि स्कूल से आये हो, जाओ बाहर, ज़रा खेलो-कूदो, नहीं तो दिमाग़ बिगड़ जायगा। और बच्चों का भी यही मन रहता है कि जहां चार खेल रहे हों वहीं बाकी सब जमा हो जायं। नतीजा यह होता है कि सब बच्चे गली में निकल जाते हैं। बड़े क्रिकेट खेलते हैं। छोटे लुका-छिपी के खेल। कुछ कंचे खेलते हैं। मतलब यह कि घर में कोई नहीं बैठता। कोई खेल के शौक से, कोई मां-बाप की डांट-डपट के डर से।

पतली-सी गली तो है ही, सो आये दिन बच्चे आपस में झगड़

पड़ते हैं। वह तो झगड़कर फिर आपस में मिल जाते हैं, पर उनके मां-बापों के दिल में बात बैठ जाती है और सभी पीठ-पीछे एक-दूसरे की बुराइयां करते रहते हैं।

ऐसे झगड़ों से भी बच्चों के अंदर झगड़ालू आदतें पक्की होती जाती हैं।

बच्चे झगड़कर फिर आपस में मिल जाते हैं।

दूसरे दिन शाम तक मैं इन्हीं झगड़ों से बचने का उपाय सोचती रही। अचानक मेरे मन में एक विचार कौंधा। शाम को आफिस से लौटते समय मैंने पार्क के भाई-साहब से पूछा, "आपका आगामी फिल्म-शो कब हो रहा है?"

भाईसाहब ने कहा—"इसी रविवार को।"

मैं—"अच्छा, उस फिल्म में यदि मैं अपने गली के पंद्रह-बीस बच्चों को बुला लाऊं तो नियम-विरुद्ध तो नहीं है?"

भाईसाहब—"नहीं-नहीं, जरूर लाइये, बड़ी खुशी से लाइये। हम तो चाहते ही हैं कि हमारे पार्क में अधिक-से-अधिक बच्चे सम्मिलित हों। हमारे कार्यक्रमों का ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे लाभ उठावें।"

मैं—"आपके पार्क में कितनी से कितनी उम्र तक के बच्चे प्रवेश पा सकते हैं?"

भाईसाहब—"छः वर्ष से बारह वर्ष तक की उम्र के।"

मैं—"आप क्या कुछ शुल्क भी लेते हैं?"

भाईसाहब—"जीहां, चार आने प्रवेश-शुल्क तथा चार आने मासिक शुल्क।"

मैं—"पार्क कितने बजे से कितने बजे तक लगता है?"

भाईसाहब—"गर्मियों में ६ बजे से ८ बजे तक, जाड़ों में ४॥ से ६॥ तक।"

मैं—"समय तो आपने बहुत अच्छा रखा है। इन क्लबों को किनकी ओर से खोला गया है?"

भाईसाहब—"हमारा यह पार्क तो भारतीय बाल-कल्याण-समिति ने खोल रखा है।"

मैं—"नगर में क्या और क्लब भी हैं?"

भाईसाहब—"जीहां, बहुत हैं। हमारे नगर में लगभग पंद्रह-बीस पार्क होंगे।"

मैं—"क्या सभी आपकी समिति ने खोल रखे हैं?"

भाईसाहब—"नहीं बहनजी, कुछ पार्क हमारी समिति ने खोले हैं, कुछ नगरपालिका ने, कुछ ऐच्छिक संस्थाओं ने, कुछ सरकार ने।"

मैं—"क्या आप पार्क के अतिरिक्त कहीं और भी जाते हैं?"

भाईसाहब—"जी हां, बच्चों का शौक पूरा करने के लिए छुट्टी के दिन उन्हें कहीं बाहर ले जाते हैं। कभी किसी रमणीक स्थान पर दिनभर की पिकनिक कर लेते हैं, कभी ऐतिहासिक स्थान पर ले जाते हैं और वहां की खासियत बताते हैं। कुछ खान-पान कराते हैं, खेल-कूद कराते हैं और घर आ

जाते हैं। उससे उनका ज्ञान भी बढ़ता है और मनोरंजन भी हो जाता है।

मैं—"और कहीं भी ले जाते हैं या सिर्फ दर्शनीय और मनोरम स्थानों में ही ?"

भाईसाहब—"जीहां, बच्चों के लाभ के जहां कहीं भी कार्यक्रम होते हैं, वहीं ले जाते हैं। बच्चों की फिल्म हुई या प्रदर्शनी हुई या कोई बाल-दिवस का कार्यक्रम हुआ, तो वहीं हम बच्चों को ले जाते हैं। आने-जाने का खर्चा बच्चे ही देते हैं। यदि लंबा कार्यक्रम हुआ तो समिति की ओर से उन्हें कुछ जलपान करा दिया जाता है।"

मैं—"यह तो बहुत अच्छी बात है। ऐसे बच्चों को, जिनके मां-बापों को घुमाने-फिराने का समय नहीं मिलता, आपकी सहायता से बहुत-कुछ देखने-सुनने को मिल जाता है।"

भाईसाहब—"जीहां, यही नहीं, हम तो उन्हें देश के नेताओं से भी भेंट कराने ले जाते हैं। जैसे नेहरूजी के जन्म-दिवस पर उनके घर जाकर बधाई दे आते हैं। राजेंद्रबाबू के जन्म-दिवस पर राष्ट्रपति-भवन चले जाते हैं। इस प्रकार बच्चे बहुत निकट से उनसे भेंट कर लेते हैं।"

मैं—"वाह, यह तो बहुत बढ़िया बात है। क्लब (पार्क) के बिना ऐसे अवसर कितने बच्चों को मिल सकते हैं!"

भाईसाहब—"रविवार के दिन रेडियो पर बच्चों के प्रोग्राम में भी ले जाते हैं।"

मैं—"आपके ये प्रयत्न तो सचमुच सराहनीय हैं।"

भाईसाहब—"गर्मियों के दिनों में हम कभी-कभी उन्हें 'बच्चों के तालाब' पर ले जाते हैं। वहां बच्चे पानी में तैरते हैं,

नहाते हैं। इससे उनका पानी का डर दूर हो जाता है, तैरना हो जाता है, साथ ही व्यायाम भी।"

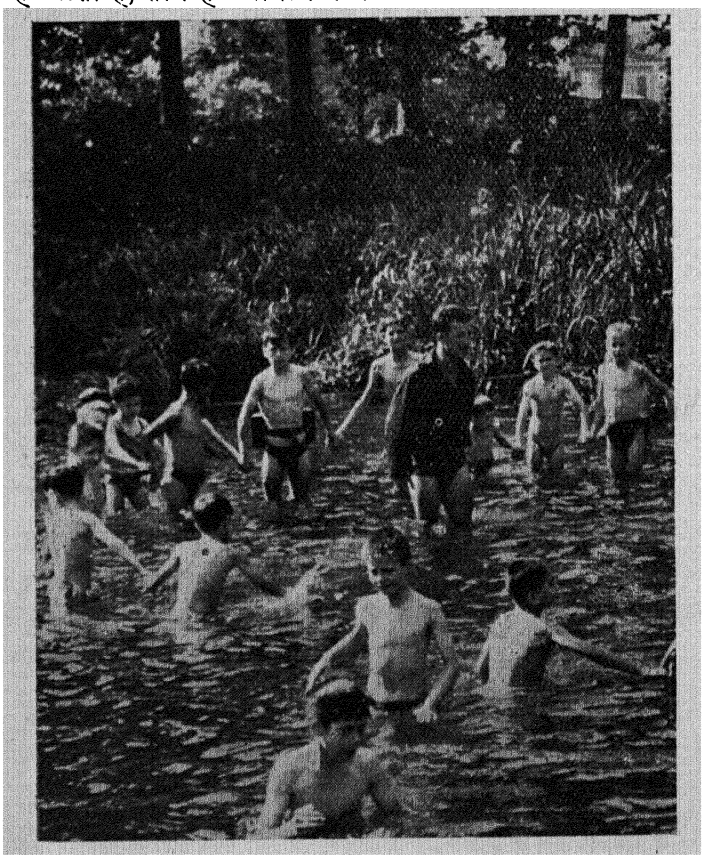

बच्चों को नहाना बहुत पसंद है

मैं—"अच्छा, आमतौर पर रोज़ क्या-क्या होता है?"

भाईसाहब—"रोज़ ये बच्चे एक-डेढ़ घंटे आपस में मिल

कर खेलते हैं--जैसे वालीबाल, फुटबाल, लंगड़ी-टांग-दौड़, कबड्डी इत्यादि।"

मैं--"और बाकी समय में ?"

भाईसाहब--"हाज़िरी होती है। कहानियां, पहेलियां, ज्ञान की बातें, चुटकुले, इत्यादि होते हैं। ये हम बच्चों से ही कहलवाते हैं। कोई कहानी सुनाता है, कोई चुटकला सुनाता है। कोई सवाल पूछता है। बच्चे उसका उत्तर देते हैं, और जिस बच्चे के उत्तर सबसे अधिक ठीक होते हैं उसे कुछ इनाम भी दे देते हैं, जैसे टाफी, बिस्कुट, कापी, पैन्सिल, पेन, रूमाल इत्यादि।"

मैं--"और जो कमज़ोर हों या बीमारी से उठे हों, या जो जल्दी थक जाते हों, उनके लिए भी कोई खेल हैं ?"

भाईसाहब--"जीहां, उनके लिए कैरम, ल्यूडो, होर्सरेस, व्यापार, ड्राफ़ इत्यादि कई प्रकार के खेल होते हैं।"

मैं--"अच्छा, और कोई सुविधा ?"

भाईसाहब--"जीहां, हमारा अपना पुस्तकालय है।"

मैं--"यह तो बहुत अच्छा है।"

भाईसाहब--"हम अपने बालकों में से एक प्रधान, एक मंत्री, एक पुस्तकालय-अध्यक्ष चुन लेते हैं। मंत्री खेलों की देखभाल करता है। पुस्तकालय-अध्यक्ष किताबों की और प्रधान बाक़ी सब बातों की।

मैं--"कितनी पुस्तकें हैं उसमें ?"

भाईसाहब--"लगभग ढाई सौ।"

मैं--"पुस्तकें किस प्रकार की होती हैं ?"

भाईसाहब--"ज्यादातर कहानियों की। बच्चों की पत्रिकाएं भी रहती हैं। कुछ साप्ताहिक, कुछ मासिक। बच्चे सप्ताह में एक

दिन पुरानी पुस्तकें देकर नई पुस्तकें ले सकते हैं।"

मैं—"आपका कोई वार्षिक उत्सव भी होता है?"

भाईसाहब—"जीहां, वर्ष में एक दिन सब क्लब मिलकर एक मेला करते हैं। उस समय बच्चे कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, रेस होती हैं, खेल होते हैं, भोज होता है और फिर सबसे बढ़िया कार्यक्रम प्रस्तुत करनेवाले क्लब को पुरस्कार मिलता है। रेसों में जीतनेवाले बच्चे भी इनाम पाते हैं।"

मैं—"अच्छा, १४ नवंबर को परिवहन-मंत्रालय ने एक रेल 'बाल-भवन' को भेंट की है। यह बाल-भवन क्या है?"

भाईसाहब—"यह बाल-भवन भी हमारे पार्क या क्लब की तरह एक मनोरंजन-केंद्र है, जहां बच्चे शाम को जमा होंगे और तरह तरह कार्यक्रमों द्वारा मनोरंजन और शिक्षा पायंगे।"

मैं—"यह रेल क्यों भेंट की गई है?"

भाईसाहब—"बच्चों के मनोरंजन के लिए और उन्हें रेल चलाना सिखाने के लिए। भवन बनाने से वे बारिश में भी अपना कार्यक्रम चालू रख सकते हैं।"

घर आकर मैंने मुहल्ले के सब बच्चों के नाम फ़िल्म-शो के लिए एक निमंत्रण-पत्र भेजा। मुफ़्त में सिनेमा के लिए आशा से अधिक बच्चे इकट्ठे हो गये। वे दो-चार बार सिनेमा देखने के बाद खेलने, कहानी की किताबों के लालच और पिकनिक के शौक से क्लब में दाखिल हो गये और रोज शाम को वहीं जाकर खेलने लगे।

: ४ :

पाठशाला

घर की ख़रीद-फ़रोख्त के लिए मुझे रोज़-रोज़ तो समय मिलता नहीं, इसलिए मैंने प्रत्येक शनिवार को बाज़ार जाने का नियम बना रखा था। उस दिन में आफिस से जल्दी छूट जाती थी और बच्चों की भी आधी छुट्टी हो जाती थी। हम सब साथ घर से निकल जाते। मैं बाजार चली जाती और वे पुस्तकालय में चले जाते। वहां वे कुछ देर बैठकर नई पुस्तकें छांट लेते। मैं वापसी में उन्हें साथ ले आती। जाने से पहले शुक्रवार को मैं अपने तीनों लड़कों से उनकी आवश्यकताएं पूछ लेती थी। इस बार शुक्रवार की रात को मैंने बच्चों से कहा, "कहो भई, किसे क्या चाहिए?"

उत्तर में सबसे पहले मेरा छोटा लड़का हेमंत, जो कि चौथी कक्षा में पढ़ता है, बोल उठा, "अम्मा, कल शनिवार है। हमारी क्लास हुमायूं के मकबरे जायगी। मेरे मोज़े फट गये हैं, मुझे मोज़े चाहिए।"

मैंने कहा, "कल हुमायूं के मकबरे क्यों ले जा रहे हैं। कल क्या वहां कुछ ख़ास बात है?"

हेमंत—"नहीं अम्मा, ख़ास बात तो कोई नहीं है। आज हमने अपने इतिहास की पुस्तक में हुमायूं और बाबर के बारे में पढ़ा था। इसीलिए वे हमें हुमायूं का मकबरा दिखाने ले जा रहे हैं। अम्मा, हमारे मास्टरसाहब बड़े अच्छे हैं। हमें बराबर कुछ-न-कुछ दिखाते रहते हैं। पिछले शनिवार को हमें दिल्ली की मंडियां

दिखाने ले गये थे। अब अगर परीक्षा म दिल्ली की मंडियों के बारे में सवाल आयेगा तो मैं सारा लिख दूंगा। मुझे बड़ी अच्छी तरह से याद हो गया है कि अनाज की मंडी कहां-कहां हैं और सब्ज़ी की मंडियां कहां-कहां हैं?"

मैं—"भई, फिर तो तुम्हें खूब सैर-सपाटा करने को मिलता है। इतनी सैर तो हमने भी कभी नहीं की।"

शिशिर—(जो सातवीं में पढ़ता है)—"क्यों, जब तुम स्कूल में पढ़ती थीं तो घूमने नहीं जाती थीं?"

मैं—"नहीं बेटा, हमारे समय में ये सब बातें नहीं थीं। हम तो सारे समय स्कूल में बंद रहते थे। सबकुछ किताबों से ही रटते थे और रटने के कारण जल्दी ही सब भूल भी जाते थे। पर अब शिक्षा-शास्त्रियों ने यह सिद्धांत निकाला है कि आंखों-देखी बात बच्चा आसानी से नहीं भूलता। इसलिए उसे अब घुमा-

कक्षा में पढ़ते हुए

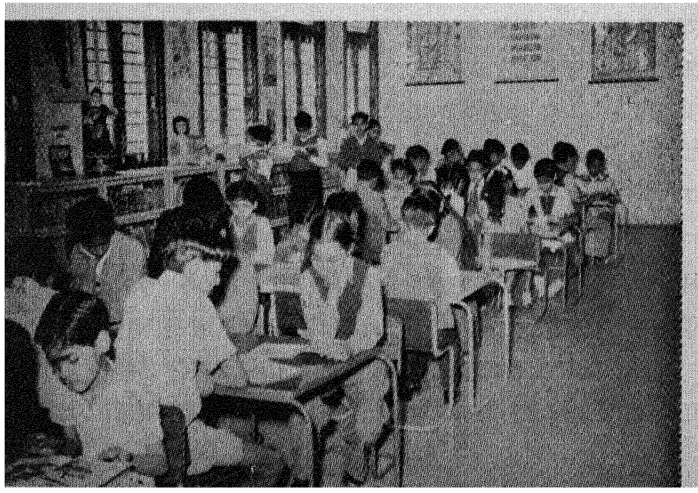

फिराकर सबकुछ समझाया और पढ़ाया जाता है। घूमने से उसका मनोरंजन भी हो जाता है।"

शिशिर—"हां अम्मा, यह बात तो हमें भी अनुभव होती है। पिछले से पिछले शनिवार को स्कूल में एक फिल्म दिखाई गई थी। उसमें सारे रोग, उनके लक्षण, उनके कारण और उपचार बताये गये थे। वे सब मुझे ऐसे याद हो गये कि कुछ न पूछो।"

मैं—"हां बेटा, आजकल शिक्षा की नई-नई प्रणालियां निकाली जा रही हैं। उनसे बच्चे के न तो मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ता है और न उसे पढ़ना एक बोझ लगता है।"

शरत्—(जो छठी में पढ़ता है)—"अम्मा, अब तो हमारे स्कूल में एक रेडियो भी लग गया है। जब कोई विशेष महत्व की तिथि आती है तो रेडियो का सारा विशेष कार्यक्रम हमें सुनाया जाता है। नाटक, कहानी, भाषण आदि से हमें वह तिथि और उस तिथि से संबंधित ऐतिहासिक घटना आदि का पता चल जाता है। मास्टरसाहब उस दिन की ऐतिहासिक घटना से संबंधित चित्र भी कमरे में टांग देते हैं। वे सारी चीज़ें मन पर गहरी अंकित हो जाती हैं।"

मैं—"हां बेटा, मारकोनी नाम के आदमी ने रेडियो का आविष्कार करके सचमुच विश्व का बहुत भला किया है। हम जब स्कूल में पढ़ते थे उस समय स्कूल की बात तो दूर, किसी के घर में भी रेडियो नहीं था। अच्छा, हेमंत, तुम्हें और कुछ तो नहीं चाहिए?"

हेमंत—"मुझे वहांतक आने-जाने के पैसे चाहिए।"

मैं—"और खाने के लिए?"

हेमन्त—"खाने के लिए स्कूल से मिलेगा। अम्मा, बड़ा मज़ा आयगा।"

मैं—"अच्छा शिशिर, तुम्हें क्या चाहिए ?"

शिशिर—"अम्मा, हमारा स्कूल पूजा की छुट्टियों में बच्चों को लंका तक ले जा रहा है। सवासौ रुपये लगेंगे। अम्मा, मुझे जाने दोगी ? बड़ी अच्छी हो, अम्मा। तुमने ही तो कहा था कि देश-पर्यटन से साधारण ज्ञान बहुत बढ़ता है। अम्मा· · ·"

मैं—"अरे, तो घबराता क्यों है ? मैंने तुझे जाने के लिए मना कब किया है। पर पूरी बात तो बता, कौन-कौन जायगा, कहां-कहां जायंगे, वहां खाने-पीने का क्या प्रबंध हुआ है ?"

शिशिर—"दिल्ली के सब स्कूलों के लिए रेलवे ने भाड़े में रियायत दी है। जहां-जहां जायंगे, वहां-वहां स्कूलों में ठहरने का प्रबंध कर दिया गया है। वहां के स्कूलों की बसें हमें घुमाये-फिरायंगी। खाने-पीने की व्यवस्था भी स्कूलों में हो गई है। हर दस लड़कों की देखभाल के लिए एक मास्टर साथ में जायगा।"

मैं—"अच्छा, तो सवासौ रुपये में खाली घूमना-फिरना है, या और भी कुछ ?"

शिशिर—"नहीं अम्मा, और कुछ नहीं। इसीमें रेल का किराया, खाना-पीना और घूमना-फिरना, सबकुछ आ जाता है।

"वापस आकर यात्रा का सारा हाल लिखकर दिखाना होगा। स्कूलवालों ने पहले ही यात्रा के सर्वोत्तम विवरण पर पुरस्कार बोल रखा है। सब स्कूलों में जो सबसे अच्छा लेख होगा, उसे पचास रुपये का पुरस्कार मिलेगा, द्वितीय को पच्चीस रुपये का।"

मैं—"यह बहुत अच्छा किया।"

शरत—"अम्मा, एक बात बताओगी ?"

मैं—"क्या ?"

शरत—"जो गरीब हैं, सवासौ रुपये नहीं खर्च कर सकते, वे कैसे घूम-फिर सकते हैं ?"

मैं—"सरकार ने इस वर्ष से एक ऐसी योजना बनाई है कि ग़रीब बच्चे भी बारी-बारी से पहाड़ों पर गर्मियों की छुट्टियों में

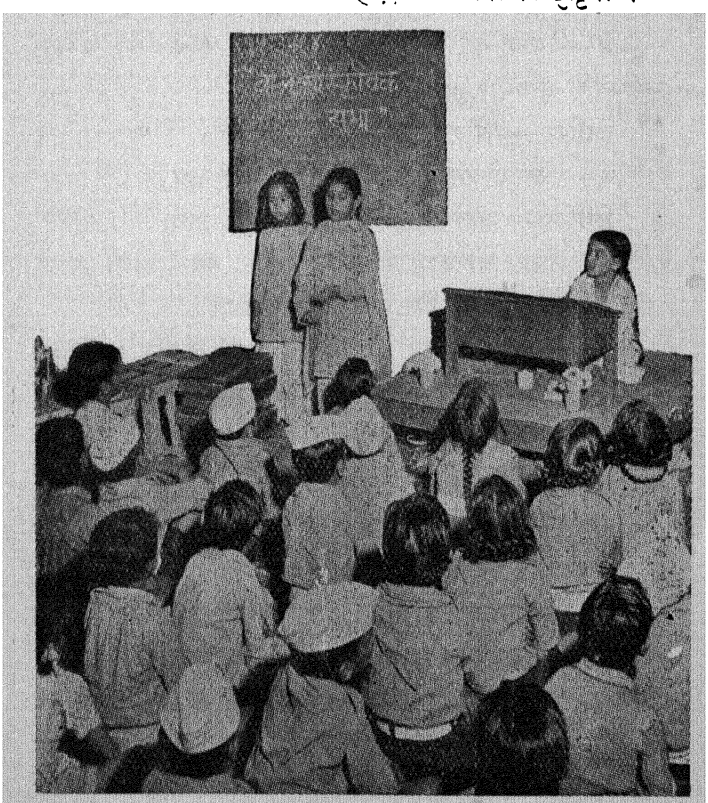

बाल-सभा

दो मास बिता सकेंगे । सरकार उन्हें सारा खर्चा देगी । उनके लिए गरम कपड़े, बिस्तर, खाना-पीना सबकी व्यवस्था करेगी । दो महीने उन्हें पर्याप्त बलवर्द्धक भोजन कराया जायगा, ताकि उनके शरीर की सारी कमी पूरी हो जाय ।"

शिशिर—"अच्छा, उन्हें यह कैसे पता चलेगा कि कौन इतना गरीब है कि उसे ले जायं और किसे नहीं ।"

मैं—"गांव का समाज-सेवक जिसकी सिफारिश करेगा, उसीको ले जायंगे ।"

शिशिर—"और शहरों में ?"

मैं—"यह योजना शहर के बच्चों के लिए नहीं है ।"

शिशिर—"वहां रहने के लिए क्या प्रबंध होगा ?"

मैं—"वहां जो सरकारी कार्यालयों के भवन खाली पड़े हैं, उन्हें इसी काम के लिए इस्तेमाल किया जायगा ।"

शरत—"तो इसका अर्थ है कि अमीर-गरीब सभी इन योजनाओं से लाभ उठा सकेंगे ।"

मैं—"हां, सब योजनाएं ऐसी ही बनाई जाती हैं, जिनसे सब-कोई लाभ उठा सकें ।"

शरत—"हर बार एक ही जगह ले जाते हैं या अलग-अलग स्थानों की यात्रा कराते हैं ?"

मैं—"अलग-अलग जगहों पर ले जाते हैं। इस घुमाने-फिराने में उनका ध्येय सारे भारत का दर्शन करा देना है, और इसीलिए उन्होंने इस योजना का नाम 'भारत-दर्शन' रखा है ।"

शिशिर—"और अम्मा, स्कूल ले जाने के लिए नये टिफ़िन कैरियर की ज़रूरत नहीं है । अगले महीने से हमें स्कूल में ही खाना मिला करेगा ।"

हेमंत––"वाह भई, वाह ! फिर तो मुझे रोज़-रोज़ खाना उठाकर नहीं ले जाना पड़ा करेगा।"

शरत––"तुम्हें पता है, अम्मा, कल व्यायाम करते समय एक लड़का बेहोश हो गया ?"

मैं––"अच्छा ! यह तो बहुत बुरी बात है। क्या बहुत देर व्यायाम कराया गया था ?"

शरत––"नहीं, वह लड़का तो व्यायाम शुरू होने के पांच मिनिट के भीतर ही गिर गया।"

मैं––"फिर क्या किया ?"

शिशिर––"झट स्कूल का डाक्टर बुलाया गया। उसने उसे दवा दी। तब उसे होश आया। अम्मा, मैं आफ़िस में मास्टरजी का रजिस्टर रखने गया था, तब सुना कि प्रिंसिपल साहब उस लड़के के पिताजी से कह रहे थे कि उनका लड़का बहुत कमज़ोर है। डाक्टर का विचार है कि उसे संतुलित भोजन नहीं मिलता।"

शरत––"हां, हमारी कक्षा के लड़कों के शारीरिक निरीक्षण की रिपोर्ट में डाक्टर ने कई लड़कों को बहुत कमज़ोर लिखा है।"

शिशिर––"अम्मा, हमारी कक्षा में कितने ही लड़के ऐसे हैं, जिनकी फ़ीस बिल्कुल माफ़ है। कपड़े भी वे बहुत फटे हुए पहन-कर आते हैं। उन्हें कैसे दूध, फल, घी, सब्ज़ी मिल सकता है ? मैंने देखा है, उनके कटोरदान में सूखी रोटियां और कटा हुआ प्याज़ रहता है। ऐसा खाकर कमज़ोर तो होना ही हुआ।

मैं––"हां, बेटा ! डाक्टरी परीक्षा में बहुत लड़के कमज़ोर पाये गये हैं। इसीलिए सरकार ने यह व्यवस्था की है कि एक समय का भोजन स्कूल में ही मिला करेगा। यह भोजन मुफ़्त होगा। इसके लिए गरीब बच्चों के माता-पिता के सिर पर कोई

खर्चा नहीं पड़ेगा। भोजन बल-वर्द्धक होगा, पोषक होगा, संतुलित होगा, जिससे गरीब बच्चों का स्वास्थ्य न गिर पाये।"

शिशिर--"तो, अम्मा, खाने की योजना बनाई है, कपड़ों की भी क्यों नहीं बना देते? उन बेचारों के पास कपड़े भी नहीं होते।"

मैं--"वर्दी देने की योजना पर भी विचार किया जा रहा है, पर अभी कोई निर्णय नहीं हो पाया है।"

हेमत--"अहा जी। बड़ा मज़ा आया। अब कपड़े भी स्कूल से मिला करेंगे।"

मैं--"कुछ देशों में तो पढ़ने-लिखने का सारा सामान, पुस्तकें-कापियां, पेन-पैंसिलें सब मुफ़्त दी जाती हैं।"

शिशिर--"हां अम्मा, यह सुविधा भी हमारे देश में अवश्य देनी चाहिए। एक लड़का है हमारी कक्षा में। उसके पिताजी की मृत्यु हो चुकी है। उसकी मां दूसरों के घर खाना बना-बनाकर गुज़ारा करती है। उसकी कापी भर जाने पर वह कई दिन तक काम करके नहीं लाया। जब मास्टरजी ने उससे प्यार से इसका कारण पूछा तो रोने लगा। बोला, उसकी माताजी के पास कापी ख़रीदने के लिए पैसे नहीं बचे। अब पहली तारीख़ को तनख़ा मिलने पर लाकर देंगी।"

मैं--"तब तुम्हारे मास्टरजी ने क्या कहा?"

शिशिर--"तब उन्होंने उसे अपने पास से कापी ख़रीदकर दी। तबसे वह रोज़ काम करता है।"

मैं--"अरे, तेरे मास्टरजी तो बहुत अच्छे हैं। अच्छा, अब अपनी चीज़ें बताओ और क्या-क्या चाहिए?"

शरत--"अम्मा, मुझे ख़ाकी वर्दी चाहिए।"

मैं--"किसलिए?"

शरत––"हमारे स्कूल में स्काउटिंग सिखाते हैं। मैंने भी उसमें अपना नाम लिखा दिया है।"

मैं––"स्काउटिग में क्या-क्या करायेंगे ?"

शरत––"हमें शिविर पर ले जायंगे, वहां जंगलों में रास्ता पहचानना, दूसरों को बताना, रोगियों का उपचार करना, आग बुझाना, तरह-तरह की सीटियां बजाकर दूर बैठे मित्रों को अपनी आवश्यकता बताना, रस्सी की तरह-तरह की गांठें बनाना, असहाय की सहायता करना, यही सब।"

मैं––"वहां जंगल में तुम्हें खाना कौन बनाकर खिलायेगा। क्या नौकर जायंगे तुम्हारे साथ ?"

शरत––"वहां हमें अपने हाथों से सब काम करना सिखायेंगे––भोजन बनाना, बिस्तर लगाना, सफाई करना इत्यादि-इत्यादि।"

शिशिर––"अम्मा, मुझे एक बांसुरी भी चाहिए। हमारे स्कूल में संगीत तथा वाद्य-वृंद में सब तरह के वाद्य सिखाये जाते हैं। मैं बांसुरी सीखूंगा।"

शरत––"मैं गाना सीखूंगा।"

हेमंत––"मैं तबला सीखूंगा।"

मैं––"जिसे संगीत अच्छा न लगता हो, या इस ओर जिसकी रुचि न हो ?"

शिशिर–"वह न सीखे। कोई ज़रूरी थोड़े है। जो सीखना चाहे सीखे, जो न सीखना चाहे न सीखे। कुछ तो शुरू ही नहीं करते। कुछ शुरू करते हैं, पर संगीत में रूचि न होने से बाद में वे छोड़ देते हैं। कुछ ऐसे हैं, जिन्हें संगीत की प्राकृतिक देन है। वे अंत तक जारी रखते हैं और फिर स्कूल में चमक जाते हैं।"

शरत ––"यही नहीं, हमारे स्कूल में चित्रकला की कक्षाएं भी खुली हुई हैं। जिनको उसका शौक होता है, वे उसे सीखते हैं।"

शिशिर––"अम्मा, इन छुट्टियों के बाद हमारे स्कूल में एक मास के लिए एक मास्टर टोकरी बुनना सिखायेंगे।"

शरत––"जैसे पिछले साल कागज के फूल बनाना सिखाया था।"

शिशिर––"अम्मा, कुछ गरीब बच्चों ने इतने सुंदर फूल बनाये कि दीवाली पर वैसे फूल खूब बना-बनाकर बेचे और

चित्र-कला के शौकीन

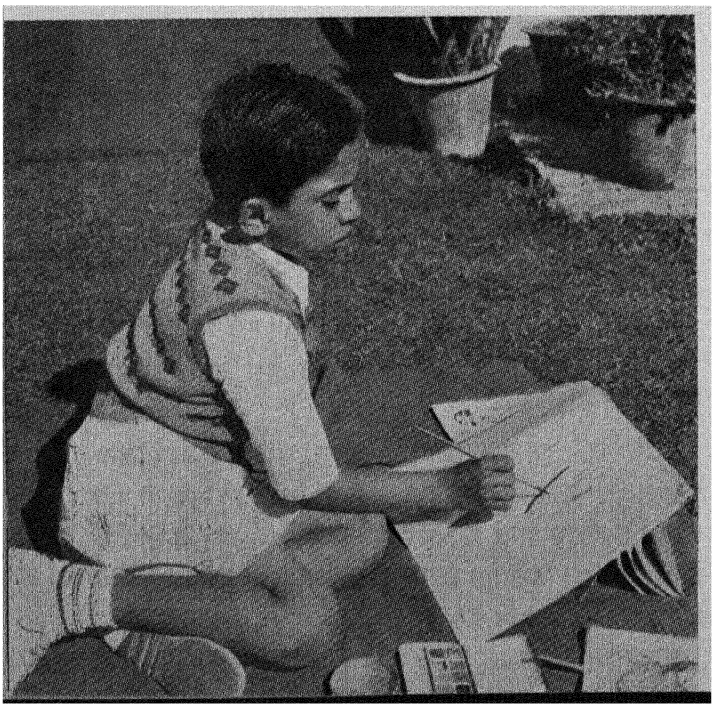

पैसा कमाने में उन्होंने अपने मां-बाप को सहायता दी।"

मैं—"हां बेटा, इसमें यही तो लाभ है। एक तो बच्चे को अपनी रुचि का काम करने को मिल जाता है, दूसरे, किसी काम को अच्छी तरह सीख जाने से उसे अपना धंधा बना सकता है।"

शिशिर—"अम्मा, पप्पी का बड़ा भाई पोलीटैकनीक स्कूल में पढ़ता है। वहां लकड़ी का काम और मशीनों का काम भी सिखाया जाता है।"

मैं—"हां बेटा, सब चीज़ें इसीलिए सिखाते हैं, जिससे यह पता चल जाय कि किस बालक में प्राकृतिक देन किस कला की है। किसकी किसमें रुचि है ? कौन किसमें तेज है ? यह पता लग

सांस्कृतिक कार्यक्रम

जाने पर आगे उसे उसी व्यवसाय में डाल देने से वह बहुत चमक जाता है।"

शरत—"अम्मा, आज बहुत थक गये। भूख लग आई।"

मैं—"क्यों, थक क्यों गये ?"

शरत—"हमारी वार्षिक अंतर्पाठशालीय खेल-प्रतियोगिता निकट जो आ रही है। हमें रोज़ अभ्यास करना पड़ता है।"

मैं—"अच्छा, यह बात है। तूने किसमें भाग लिया ?"

शरत—"सौ मीटर की रेस में।"

शिशिर—"अम्मा, हमारे स्कूल में तो आयेदिन कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता है। किसी दिन खेल-प्रतियोगिता, तो किसी दिन संगीत-प्रतियोगिता। किसी दिन वाक्-प्रतियोगिता तो किसी दिन कहानी-प्रतियोगिता। कभी मुशायरा तो किसी दिन, फैंसी ड्रेस। किसी दिन विभिन्न कक्षाओं की नाटक-प्रतियोगिता, तो किसी दिन अंतर्पाठशालीय उत्सवों में लोक-नृत्य ड्रिल, नाटक। और-और भी न जाने कितनी तरह के सांस्कृतिक कार्यक्रम होते रहते हैं।"

मैं—"अभी क्या है। बड़ी कक्षाओं में जाकर तुम्हें एन० सी० सी० की शिक्षा भी देंगे।"

शरत—"वह क्या होती है ?"

मैं—"वह सैनिक-शिक्षा होती है। उसका पूरा नाम है नेशनल कैडट कोर। उसे नेशनल डिसिप्लिनरी कोर भी कहते हैं।"

शरत—"यह क्या होता है ?"

मैं—"इसमें भी कवायद करनी सिखाई जाती है और अपने मन और शरीर को काबू में रखना सिखाया जाता है।"

शिशिर—"और अम्मा कल की वह बात याद है ?"

मैं—"क्या ?"

शिशिर—"देखो, भूल गईं इतनी जल्दी ? मैंने तुम्हें स्कूल से एक पर्चा लाकर दिया था ?"

मैं—"अरे हां, याद आगई। वह पर्चेवाली बात! हां, याद है।"

शिशिर—"मास्टरजी ने तुम्हें बुलाया है न कल?"

मैं—"हां!"

शिशिर—"क्यों अम्मा, मास्टरजी ने हमारी कक्षा के सब लड़कों को वे पर्चे दिये थे। सबके माता-पिता को बुलाया है?"

मैं—"कल माता-पिता-शिक्षक-परिषद होगी।"

शिशिर—"वह क्या होती है?"

मैं—"यह परिषद् विद्यार्थियों के मां-बाप और शिक्षकों का एक संगठन है।"

शिशिर—"इसमें क्या होता है?"

मैं––"इसमें माता-पिता और शिक्षक एक निश्चित समय में आपस में मिलते हैं और एक-दूसरे की शिकायतों को, बच्चों की समस्याओं को मिलकर हल करने की कोशिश करते हैं। बच्चों में बहुत-सी ऐसी बुरी आदतें पड़ जाती हैं, जिनको छुड़ाने के लिए शिक्षक और मां-बाप दोनों का सहयोग जरूरी है। पर जब वह आदत खाली शिक्षक ही की नज़र में आती है तो वह मां-बाप का सहयोग पाने के लिए परिषद की मीटिंग के दिन मां-बाप का ध्यान उस ओर खीचता है। इसी तरह जब मां-बाप कोई बात देखते हैं तो वे मीटिंग में शिक्षक का ध्यान उस ओर खींच देते हैं।"

शिशिर––"सच, अम्मा ?"

मैं––"हां, सच ! बेटा अब देश के सभी स्कूलों और बाल-संस्थाओं में सुधार हो रहा है, जिससे आज के बालक भविष्य में अच्छे व कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक बन सकें।"

: ५ :

अनाथाश्रम

मैं नुमायश जाने के लिए बस के अड्डे पर खड़ी थी। बच्चे मेरे साथ थे। भीड़ ज्यादा थी। कतार जरा लंबी थी। जल्दी बस मिलने की आशा न थी। इतने में दो-चार बच्चों ने आकर हमें घेर लिया। गंदे शरीर, कई दिन से नहाये नहीं। कपड़ों के नाम फटी कमीज और छोटा-सा जांघिया। हाथ फैलाकर बोले—"माई, भगवान के नाम पर कुछ मिल जाय, चार दिन से कुछ भी नहीं खाया।"

शिशिर बोल पड़ा—"तुम कुछ काम क्यों नहीं करते?"

शरत्—"हाथ-पैर चलते हैं, फिर भी भीख मांगते हो?"

बालक—"क्या काम करूं? मुझे कौन नौकरी देगा?" मेरी छोटी ऊमर देखकर कोई मुझे नौकरी देने को तैयार नहीं।

"बूट-पालिस के लिए पैसा चाहिए, कई रंग की पालिश, कई बुरुश, उन्हें रखने के लिए बक्सा। मेरे पास तो खाने को भी कौड़ी नहीं है। अखबार बेचनेवाले इतने बच्चे हो गये हैं कि इस काम से हमें पूरा नहीं पड़ता।"

मैं—"टोकरी बुनो, कुर्सी बुनो, हाथ की चीजें बुनो।"

बालक—"मुझे ये काम नहीं आते, मुफ्त में कौन सिखायेगा?

मैं—"कई ऐसे अनाथाश्रम खुले हुए हैं, जहां तुम-जैसे बच्चों को काम सिखाया जाता है।"

बालक—"माई तेरा भला हो। मुझे भी वहां भर्ती करा

दे। पर जबतक काम पूरा नहीं आवेगा तबतक क्या खाऊंगा ?"

मैं—"खाने के लिए तुम्हें वहीं मिलेगा।"

बालक—"मुफ्त !"

मैं—"हां, मुफ्त। तुम्हारे घर में कौन-कौन हैं ?"

बालक—"कोई नहीं, मां। पिछले साल मेरे मां-बाप दोनों हैजे में मर गये।"

मैं—"वे क्या करते थे ?"

बालक—"दूसरों के घरों में बर्तन मांजते थे।"

शिशिर—"तो क्या तुम तभी से भीख मांग रहे हो ?"

बालक—"नहीं, कुछ दिन तक घर की चीजें बेच-बेचकर गुजारा किया। जब सब चीजें खतम हो गईं, तो क्या करता। पेट भरने के लिए भीख मांगनी पड़ी।"

हेमंत—"तुम किसी रिश्तेदार के घर क्यों नहीं चले गये।"

बालक—"चाचा के घर गया था, पर वे बहुत मारते थे मुझे। सो मैं एक दिन भाग आया।"

मैं—"अब कहां रहते हो ?"

बालक—"मेरे जैसे कई बच्चे हैं। हम साथ-साथ घूमते-फिरते हैं। रात को कहीं भी पड़ रहते हैं, किसीके बरांडे में। मां, सच बताओ वहां रहने को जगह मिलेगी ?"

मैं—"हां, वहां रहने को जगह मिलेगी, सोने को बिस्तरा मिलेगा, तख्त मिलेगा। वे सारी जरूरतें पूरी कर देते हैं।"

बालक—"और पहनने को ?"

मैं—"पहनने को कपड़े मिलते हैं। सर्दियों में कोट और स्वेटर मिलते हैं। ओढ़ने-बिछाने को कंबल, चादर और रजाई।

गर्मियों में नेकर, कमीज, पाजामे और कुर्ते।"

बालक—"वे लोग कुछ पढ़ाते भी हैं?"

मैं—"हां, क्यों नहीं! पढ़ाने का भी पूरा इंतज़ाम है। पर किसी आश्रम के पास ज्यादा पैसा न होने से वहां के बच्चे प्राथमिक शिक्षा ही पा सकते हैं। कोई संस्था स्कूल से जुड़ी होती है तो वहां ऊंची शिक्षा दिला देते हैं। वहां सब पढ़ने की पुस्तकें, कापी, पेंसिल मुफ्त, और यदि बच्चा खास कमजोर हुआ तो उसके लिए मास्टर भी रख देते हैं।"

बालक—"और अगर कोई इससे भी आगे पढ़ना चाहे तो?"

मैं—"तो उसे रहना-खाना-कपड़ा तो पहले की भांति मुफ्त मिलता रहता है, पर कालिज की फीस का प्रबंध उसे आप करना पड़ता है। ऐसे बहुत-से बच्चों ने एम० ए० करके ऊंचे-ऊंचे ओहदे प्राप्त किये हैं।"

बालक—"वहां और भी कुछ सिखाते हैं?"

मैं—"हां, वहां संगीत की अच्छी शिक्षा दी जाती है। गायन-कला और वाद्य संगीत। कई लड़के तो संगीत में ऐसे होशियार हो गये हैं कि रेडियो में उन्हें जगह मिल गई है।"

बालक—"वहां कोई बीमार पड़ जाय तो?"

मैं—"बच्चों को बीमारी या कमजोरी की हालत में औषधालय से दवाई मिलती है।"

बालक—"मां, अगर वहां कोई बहुत छोटा बच्चा दाखिल होना चाहे तो हो सकता है क्या?"

मैं—"बहुत छोटे बालकों की देखभाल के लिए वहां नौकर होते हैं, जो उन्हें नहलाते-धुलाते और खिलाते-पिलाते हैं। उनके

कपड़े धोते हैं। वैसे वहां के बड़े बच्चे भी छोटे बच्चों की देखभाल करते हैं।"

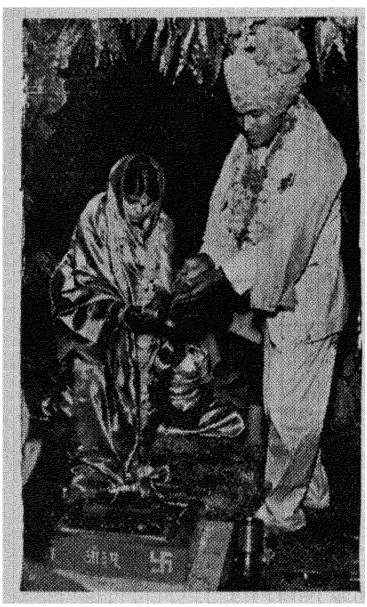

बड़ी उमर की लड़कियों का अच्छे वरों से विवाह

बालक—"मां, अगर मेरा दिमाग पढ़ाई में न लगा तो ?"

मैं—"ऐसे बच्चों को वे दर्जीगिरी और बढ़ईगिरी अम्बर चर्खा चलाना आदि का काम और कुर्सी बुनना, टोकरी बुनना सिखा देते हैं।"

बालक—"मां, अब मैं सड़कों की धूल नहीं छानूंगा, मैं जरूर इनमें से किसी-न-किसीमें दाखिल हो जाऊंगा।

मैं—"अनाथाश्रम में बच्चों को सब तरह की सहायता मिलती हैं। बालिकाश्रम मे लड़कियों को सिलाई, बुनाई, कढ़ाई, भोजन बनाना, आचार मुरब्बे डालना, खिलौने बनाना, बटुए बनाना, अंबर चखा चलाना और गाना-बजाना सिखाते हैं। पढ़ाई तो कराते ही हैं। बड़ी उमर की लड़कियों के लिए अच्छा वर खोज देते हैं। प्रायः सभी आश्रमों में शाम को मनोरंजन और खेलकूद की व्यवस्था होती है। बच्चों को पिकनिक पर भी ले जाते हैं, फिल्म-शो

दिखाते हैं।"

शिशिर--"अम्मा, अनाथाश्रम में पैसा कहां से आता ?"

मैं--"बेटा, बहुत-से धनी और दयालु पुरुष दान देते हैं।"

बालक--"मां, भगवान तुम्हारा भला करे। अब मैं अपनी ज़िंदगी बर्बाद नहीं करूंगा। किसी अनाथाश्रम में भरती होकर पढ़ूंगा, लिखूंगा और काम सीखूंगा।"

: ६ :

बाल-सुधार-गृह

इस बार जब मैं कलकत्ते से लौटी तो आते ही बच्चों ने घेर लिया।

शिशिर—"अम्मा, तुम तो कलकत्ता कई दिन लगाकर आई। क्यों, कैसा लगा वह ?"

मैं—"बेटा, शहर तो बहुत बड़ा है।"

शिशिर—"हमारे लिए क्या-क्या चीजें लाईं ?"

शरत—"मैंने तुमसे एक बुद्ध की मूर्ति लाने को कहा था।"

हेमंत—"मैंने तुमसे मिट्टी के छोटे-छोटे खिलौनों का सेट लाने को कहा था।"

शिशिर—"और मैंने तुमसे सितार लाने को कहा था।"

मैं—"बेटा, तुम्हारी मांगें मैं जरूर पूरी करती, पर जानते हो पहले दिन ही मेरा बटुआ उड़ गया ?"

सब बच्चे—"हैं ! बटुआ उड़ गया ? कैसे ?"

मैं—"जब शिक्षा-सम्मेलन के मंडप में रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम देख रही थी तो किसी तरह बहुत सारे बच्चे घुस आये।"

शिशिर—"बच्चों से क्या ? तुम बटुआ उड़ने की बात सुनाओ।"

मैं—"हां, हां, वही तो सुना रही हूं। वहां मेरे आसपास भी बहुत-से बच्चे खड़े थे। कार्यक्रम शुरू होने पर वे रोशनी बुझाकर अंधेरा कर देते हैं। कार्यक्रम समाप्त होने पर रोशनी जली तो

देखती क्या हूं कि मेरा बटुआ गायब और बटुए के साथ-साथ वहां के सब बच्चे भी नदारद।"

शरत--"तुम्हें बिल्कुल पता नहीं चला कि कब बटुआ गया ?"

मैं--"बेटा, अगर यह पता चल जाता तो बटुआ क्यों उड़ने देती ?"

हेमंत--"क्या इतने छोटे-छोटे बच्चे भी ऐसा अपराध कर बैठते हैं ?"

मैं--"हां बेटा, बिगड़े हुए बच्चे सब तरह के अपराध कर सकते हैं। जेब कतरना, चीजें चुराना, दुकान से चीजें उठा लेना, ताला तोड़ना।"

शरत--"हे भगवान, उनमें ऐसा साहस कैसे आ जाता है ?"

मैं--"अरे, इतना ही नहीं, कभी-कभी तो वे खून करने को भी तैयार हो जाते हैं।"

शिशिर--"इन्हें कौन सिखाता है यह सब ?"

मैं--"बुरी संगत।"

शिशिर--"वे बुरी संगत में पड़ कैसे जाते हैं ?"

मैं--"चीजों की तंगी से, मां-बाप की गरीबी से या....."

शरत--"या क्या ?"

मैं--"या मां-बाप की लापरवाही से। बेटा, कहीं-कहीं तो मां-बाप ही ग़रीबी के कारण बच्चों से बुरे काम करवाने लगते हैं। कहीं मां-बाप अपने कारोबार में, घर-गृहस्थी के झंझट में या भोग-विलास में इतने अधिक डूब जाते हैं कि वे बच्चे की ठीक से परवा नहीं कर पाते और ऐसे बच्चे बुरी संगत में

पड़कर सब तरह के कुकर्म करने लगते हैं।"

शरत––"बच्चों के बिगड़ने के और क्या कारण हैं?"

मैं––"कुछ बच्चे अनाथ होने पर बिगड़ जाते हैं। जब उनके मां-बाप मर जाते हैं, या मां-बाप में से एक मर जाता है, उसकी देखभाल करनेवाला कोई नहीं रहता तब वे बुरी संगत में पड़कर या भूख से लाचार होकर चोरी करना सीख जाते हैं।"

शिशिर––"अच्छा, बुरी आदत पड़ने के और भी कोई कारण होते हैं क्या?"

मैं––"हां, चोरों और जेब-कतरों के दल बने हुए होते हैं। वे अपनी रोजी के लिए बच्चों को चुराकर कहीं दूर ले जाते हैं। वहां मार-पीटकर उन्हें चोरी और जेब कतरने की कला सिखाते हैं। उनपर कड़ी निगाह रखते हैं, कहीं भागने नहीं देते। ऐसे बच्चे कुछ दिन में कुशलता से चोरी करना सीख जाते हैं।"

शिशिर––"तो पुलिस इन्हें पकड़ती क्यों नहीं?"

शरत––"उन्हें सजा क्यों नहीं देती?"

हेमंत––"उन्हें जेल में क्यों नहीं बंद करती?"

मैं––"बेटा, जबतक उनके अभाव को या उनकी बुरी आदत के कारण को नहीं मिटाया जायगा तबतक जेल में ठूंसने से कोई लाभ नहीं। सजा भुगतने के बाद जब उन्हें फिर से भूखेपेट दिन बिताने पड़ेंगे तो फिर चोरी करेंगे। या जब दुबारा मां-बाप की लापरवाही से बच्चा स्नेह का भूखा हो जायगा तो बुरे लोग अपना प्यार दिखाकर उसे फांसेंगे?"

शिशिर––"तो इसका इलाज क्या है?"

मैं––"इसका इलाज है इन्हें आत्म-निर्भर बनाना। कुछ कारोबार सिखाना, जिससे इन्हें भूखा न रहना पड़े। या इनके मां-

बाप को समझाकर उनके आचरण में परिवर्तन करना।"

शरत—"ऐसा कौन करेगा ?"

मैं—"अपराधी बाल-सुधार-गृह या बाल-सहयोग।"

शिशिर—"यह अपराधी बाल-सुधार-गृह क्या है ?"

मैं—"यह एक संस्था है। जब अपराधी बच्चों को पुलिस पकड़कर किसी महिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश करती है तो वह उन्हें अपराधी बाल-सुधार-गृह के पास भेज देती है।"

शिशिर—"बच्चों को यहां कितने दिन के लिए रखा जाता है ?"

मैं—"महिला मजिस्ट्रेट उनका अपराध देखकर समय निश्चित कर देती है। कुछ को जमानत पर छोड़ देते हैं।"

शिशिर—"छोड़ तो देते हैं, पर बच्चा बाहर आकर फिर वही सब काम करने लगे तो ?"

मैं—"जमानत का अर्थ यह होता है कि मां-बाप उसका जिम्मा लें कि आगे से यह ऐसा काम नहीं करेगा।"

शरत—"तब तो हर अपराधी को उसके मां-बाप छुड़ा लेते होंगे ?"

मैं—"नहीं, ऐसा नहीं होता। एक समाज-सेवक उसके घर के आसपास जाकर पूछताछ करके उसके घर की दशा, मां-बाप के चरित्र और स्थिति के बारे में पता करता है। अगर वे सचमुच बच्चे को सुधारने की अवस्था में हों, तब तो बच्चे को छोड़ते हैं, नहीं तो नहीं।"

शरत—"बाद में इस बात का पक्का पता कैसे चलेगा कि वह ठीक हो गया ?"

मैं—"समाज-सेवक हर महीने उसके घर जाकर पता करता है। उसके बाप की रिपोर्ट ली जाती है।"

शिशिर—"और अगर किसीकी जमानत देनेवाला कोई न हो तो ?"

मैं—"बड़े अपराधियों को अधिक समय के लिए और छोटे अपराधियों को कम समय के लिए वहीं गृह में रख लेते हैं।"

शिशिर—"क्या बाल-सहयोग में भी सजा पानेवाले अपराधी भेजे जाते हैं ?"

मैं—"नहीं, वहां सजा पानेवाले तो नहीं भेजे जाते, परंतु वहां ऐसी प्रवृत्तियों के बालक स्वयं ही आकर्षित होकर पहुंच जाते हैं, या उनके मां-बाप उन्हें वहां छोड़ आते हैं।"

शिशिर—"बच्चे स्वयं वहां कैसे पहुंच जाते हैं ?"

मैं—"बाल-सहयोगवालों ने घनी आबादी के बीच पांच ऐसे केंद्र बना रखे हैं, जहां बच्चे खेल-कूद या फिल्म या हाथ के काम के कारण आकर्षित होते हैं। इन केंद्रों में आने-जाने वाले बच्चों को बाल-सहयोग का पता चल जाता है और वे अपने जीवन में सुधार करने के लिए कुछ सीखने की खातिर उस संस्था में दाखिल हो जाते हैं।"

शरत—"तो उनमें सुधार कैसे हो जाता है ?"

मैं—"अपराधी बाल-सुधार-गृह तथा बाल-सहयोग, इन दोनों ही संस्थाओं में एक-एक मनोवैज्ञानिक रहता है।"

शिशिर—"उसका क्या काम होता है ?"

मैं—"उसका काम होता है बच्चे से मित्रता करके उसके जीवन का पिछला इतिहास मालूम करना। उसके मां-बाप, भाई-बहन, संगी-साथियों, घर-बार, पास-पड़ौस वगैरह की जानकारी

करना। उसके घर की आर्थिक स्थिति तथा उसके मां-बाप के व्यवहार का पता चलाना।"

शिशिर--"यदि उसके मां-बाप की लापरवाही या दोष से उसमें यह बुरी आदत पड़ी हो तो ?"

मैं--"तो ये मनोवैज्ञानिक उसके घर जाकर उसके मां-बाप से बातचीत करके उन्हें समझाने-बुझाने की कोशिश करते हैं। यदि मां-बाप बात को समझ जाते हैं तो बच्चा उनकी निगरानी में छोड़ दिया जाता है, अन्यथा उसे संस्था में रख लेते हैं।"

शिशिर--"बच्चा बाद में सुधरा या नहीं और मां-बाप ने बालक में रुचि लेनी आरंभ की या नहीं इसका पता कैसे चलता है ?"

मैं--"इसका पता मनोवैज्ञानिक बीच-बीच में करता रहता है। वह यह भी मालूम करता है कि बच्चे के मन को कभी चोट तो नहीं पहुंची ? अगर पहुंची तो कब पहुंची, कैसे पहुंची ? उसका क्या उपाय है ?"

शिशिर--"और उसके अभाव के बारे ?"

मैं--"हां, उसके अभाव के बारे में मालूम करते हैं। यह भी कि उसे किन चीजों की जरूरत रही है, उनमें से क्या-क्या मिलीं और क्या-क्या नहीं मिलीं ?"

शिशिर--"अगर अभाव के कारण उसमें यह बुरी आदत पड़ी हो तो क्या ये उसकी कमियों को पूरा कर देती हैं ?"

मैं--"उसे हाथ के काम सिखाकर इस योग्य बना देते हैं कि वह स्वयं कमा सकें और देश का अच्छा नागरिक बन सके। स्वयं अपने पांव पर खड़ा हो सके।"

शरत--"उन्हें हाथ का क्या-क्या काम सिखाते हैं ?"

दस्तकारियों की शिक्षा

मैं—"बेंत का काम, जैसे बेंत की कुर्सी, बच्चों के लिए बेंत के कमोड, बेंत के लैम्प, बेंत की टोकरियां, बेंत के बटुए, बेंत की ट्रे, आदि आदि।"

हेमंत—"और ?"

मैं—"बढ़ईगीरी, कपड़ा बुनना, सूत कातना, कपड़ा सीना, दर्जी का सारा काम, इत्यादि।"

हेमंत—"और ?"

मैं—"बागवानी, चित्र-कला, कागज के फूल बनाना, वगैरह और खेतीबाड़ी भी सिखाई जाती है।"

शरत—"ये सब काम सब लड़कों को सिखाये जाते हैं ?"

मैं––"जिस लड़के को जिस चीज का शौक हो, पहले उसको वही कला सिखाई जाती है।"

शरत––"फिर बाद में ?"

मैं––"बाल-सहयोग में तो बालक काम सीखकर बाहर जाकर काम करने लगते हैं, परंतु अपराधी-बाल-सुधार-गृह में यदि उसका पाठ्य-क्रम पूरा हो गया हो, पर उसे छोड़ने का समय पूरा न हुआ हो तो फिर दूसरी कोई कला सिखाना शुरू कर देते हैं।"

शरत––"और भी कुछ सिखाते हैं या केवल यही हाथ का काम ?"

मैं––"काम के अलावा उन्हें तीन घंटे रोज पढ़ना पड़ता है।"

हेमंत––"कौन-सी कक्षा तक की पढ़ाई कराते हैं ?"

मैं––"पांचवीं तक की बुनियादी शिक्षा दी जाती है।"

शरत––"और यदि किसीकी इससे अधिक पढ़ने की इच्छा हो तो ?"

मैं––"तो किसी स्कूल में उसे आगे पढ़ाने का प्रबंध कर दिया जाता है। इस प्रकार बाल-सहयोग के कई बच्चे कालिज तक पहुंच गये हैं।"

शिशिर––"हाथ के काम से इनकी कमाई हो जाती है ?"

मैं––"हां, क्यों नहीं। बाल-सहयोग में तो आर्डर का खूब काम लिया जाता है। वहां लोहे का काम भी होता है। लोहे की बाल्टियां, संदूक इत्यादि।"

शरत––"काम से जो कमाई होती है उसका क्या करते हैं ?"

मैं––"उन्होंने एक छोटा-सा बैंक खोल रखा है। बच्चा

अपनी कमाई उस बैंक में जमा कराता जाता है। जब कुछ रुपये जमा हो जाते हैं तो बच्चे अपनी जरूरत की चीजें खरीद लेते हैं जैसे कमीज, कोट।"

शरत––"क्या उनको वहीं से कपड़े नहीं मिलते ?"

मैं––"मिलते हैं, पर बाल-सहयोग में कुछ बालक ऐसे होते हैं, जो वहां नहीं रहते। रोजाना घर से आते-जाते हैं। वे अपनी-अपनी इच्छानुसार कपड़े बनवाकर पहनते हैं।"

शरत––"उनकी अधिक-से-अधिक क्या उमर होती है ?"

मैं––"सोलह साल की।"

हेमंत––"और कम-से-कम ?"

मैं––"छः साल। छः से तेरह साल तक के बच्चे वहां रोज जाते हैं और रोज रात को वापस अपने घर चले जाते हैं। तेरह साल से ऊपर तक के बच्चों को इच्छानुसार वहां रखा भी जाता है।"

शिशिर––"इस संस्था से छूटने के बाद बच्चे कहां जाते हैं ?"

मैं––"संस्था सिफारिश करके इन्हें कहीं-न-कहीं काम पर लगा देने की कोशिश करती है।"

शिशिर––"इन सबको अच्छा काम मिल जाता है ?"

मैं––"हां, अधिकांश को उनकी हाथ की सफाई के हिसाब से काम-काज मिल ही जाता है।"

शिशिर––"पर जिसको नहीं मिल पाता उसका क्या होता है ?"

मैं––"बाल-सहयोग के काफी बालक तो उसी संस्था में आकर काम करके कमाते रहते हैं और जो अलग काम करना

खाना-पीना, नाश्ता सब संस्था ही देती है

चाहते हैं, उनमें से कुछको उसके काम के औजार खरीद देते हैं, कुछको रुपये का प्रबंध कर देते हैं।"

शरत––"और बाल-सुधार-गृह में?"

मैं––"वहां अभी तो ऐसा कोई प्रबंध नहीं होता, पर आशा है कि भविष्य में वे भी सब बच्चों का प्रबंध कर देंगे।"

शरत––"इनके खाने का प्रबंध क्या होता है?"

मैं––"खाना-पीना, नाश्ता सब संस्था ही देती है।"

हेमंत––"और पहनने को?"

मैं––"पहनने को बाल-सुधार-गृह साल में चार निकर और चार कमीजें देता है।"

हेमंत––"और बाल-सहयोग ?"

मैं––"बाल-सहयोग में चार का ऐसा कोई कड़ा नियम नहीं है। कुछ घर का कपड़ा पहनते हैं, कुछ कमाकर जो पहनना चाहें, पहनें और कुछ को संस्था खादी के खाकी निकर और खादी की कमीज पहनने को देती है। जाड़ों में गरम कपड़े।"

हेमंत––"और सोने को ?"

मैं––"सोने को एक तख्त, एक दरी, चादर और दो-दो कंबल हर लड़के को दिये जाते हैं। बाल-सहयोग में बिस्तर ढकने को एक-एक चादर और देते हैं।"

शरत––"जिंदगी की सब जरूरतें भी पूरी हो जाती हैं और काम भी सिखा दिया जाता है।"

मैं––"हां, काम सीखने से वे खुद कमाने-खाने योग्य हो जाते हैं और शिक्षकों की संगति और शिक्षा से, स्कूल के नियंत्रण से, उनकी बुरी आदतें छूट जाती हैं।"

शिशिर––"वहां से बाहर निकलकर आज़ादी पाकर वे बहुत खुश होते होंगे ?"

मैं––"खुशी तो ऐसी होती है, जैसे और बच्चे छुट्टियों में घर लौटते समय खुश होते हैं।"

शिशिर––"क्यों ? और स्कूलों में बच्चों को कोई जेल थोड़े ही होती है। यह तो जेल-सी हुई।"

मैं––"नहीं बेटा, स्कूल की चहारदीवारी के अंदर इन्हें बिल्कुल खुला छोड़ा जाता है। अंदर, और स्कूलों की तरह खेल होते हैं।"

शिशिर—"खुले आंगन में खेल होते हैं ?"

मैं—"हां, खुले आंगन में खेल होते हैं—जैसे फुटबाल, वालीबाल।"

शरत—"तब तो उन्हें सचमुच ऐसा नहीं लगता होगा, जैसा जेल में।"

मैं—"नहीं, बिल्कुल नहीं। वहां केवल बाहर के दरवाजे पर ताला होता है, अंदर नहीं। इसलिए उन्हें ऐसा महसूस नहीं होता कि वे सजा भुगत रहे हैं, बल्कि उन्हें आजादी पाकर खुशी होती है और इसलिए उनमें और भी जल्दी सुधार होता है और बाल-सहयोग में तो बच्चे अपनी इच्छा से आते हैं, इसलिए बाहर का ताला भी नहीं होता। वहां किसी प्रकार की कोई बंदिश नहीं, कोई रोक-टोक नहीं। समय की भी कोई पाबंदी नहीं। जब चाहे आओ, जब चाहे जाओ।"

शरत—"यह क्यों ? समय की पाबंदी तो होनी ही चाहिए।"

मैं—"देखो, बहुत-से बच्चे ऐसे होते हैं जो स्कूल भी जाना चाहते हैं और काम सीखकर कुछ कमाना भी चाहते हैं, इसलिए वे शाम को आते हैं।"

शिशिर—"और ?"

मैं—"और कुछ बच्चे ऐसे होते हैं, जो दिन में काम सीख-कर शाम को खेलना चाहते हैं। वे दिन में आकर काम सीखते हैं।"

शरत—"और जो तीनों काम करना चाहते हैं ?"

मैं—"वे तीन घंटे पढ़ते हैं, तीन-चार घंटे काम सीखते हैं और शाम को खेलते हैं, आमोद-प्रमोद करते हैं।"

शिशिर—"तो ये संस्थाएं बच्चों में इस प्रकार सुधार करती हैं।"

मैं—"हां, इस प्रकार अपराधी बालकों का मानसिक अध्ययन करके, उनकी कमियों को पूरा करके, उनके घर के वातावरण में यथासंभव परिवर्तन करके, उनकी बुरी प्रवृत्तियों को उखाड़ देते हैं और उन्हें देश का उत्तरदायी और सच्चा नागरिक बना देते हैं।"

शरत—"दिल्ली के अतिरिक्त कहीं और भी ऐसी संस्थाएं हैं?"

मैं—"हां, बरेली में एक 'किशोर-संस्था' है। वहांपर किशोर कैदियों को रखते हैं।"

हेमंत—"किशोर से क्या मतलब ?"

मैं––"किशोर से मतलब है बारह-तेरह साल से लेकर बीस वर्ष की आयु तक के, जो बालक से बड़े हों और युवाओं से छोटे।"

शरत––"वहांपर भी वे ही कार्यक्रम होते हैं क्या ?"

मैं––"हां, प्रायः वे ही होते हैं। बस बच्चों के योग्य जो बातें होती हैं, उन्हें बड़ों की रुचि की कर देते हैं। नाटक, आमोद-प्रमोद, मनोरंजन, भ्रमण इत्यादि जरा बड़ी उमर के हिसाब से कर देते हैं।"

हेमंत––"और कहां-कहां हैं ऐसी संस्थाएं ?"

मैं––"बंबई, कलकत्ता और मद्रास जैसे सभी बड़े नगरों में ऐसी संस्थाएं खुल गई हैं। आशा है, अन्य स्थानों में भी उनकी व्यवस्था हो जायगी।"

: ७ :

विकलांगों का स्कूल

एक दिन मैं बाजार से जा रही थी तो देखती क्या हूं कि एक ग्रामीण दस-ग्यारह साल के एक लड़के को गोदी में उठाये जा रहा है। आश्चर्य हुआ कि इतना बड़ा लड़का अपने-आप क्यों नहीं चल रहा। इसका बाप भी अजीब आदमी है जो उसे उठाये-उठाये फिर रहा है। क्यों नहीं उससे कहता कि भइया, अपने-आप चलो। चेहरे से देखने में बीमार भी नहीं मालूम हो रहा था। हां, बाप के चेहरे पर अवश्य थकान के चिन्ह उभर आये थे। पहले तो मैं कुछ नहीं बोली। चुपचाप देखती रही। पर आखिर बोले बिना रहा नहीं गया। कह ही बैठी—"भाईसाहब, इसे खुद चलने दीजिये न। आप क्यों इतने बड़े लड़के को गोदी में लिये जा रहे हैं?"

ग्रामीण—"बहनजी, क्या करूं? मेरी तो किस्मत ही फूट गई। इसके पांव में लकवा मार गया है। अब यह अपने-आप नहीं चल सकता। अब तो यह सारी उमर का रोना हो गया। यहां दिल्ली में इसे डाक्टर को दिखाने लाया था।"

मैं—"तो डाक्टर ने क्या कहा?"

ग्रामीण—"डाक्टर ने तो कोई उम्मीद नहीं दिलाई। डाक्टरी इलाज तो कई साल से चल रहा है, पर कोई फायदा नहीं हुआ।"

मैं—"फिर, अब क्या सोचा है?"

ग्रामीण—"सोचूंगा क्या, बहनजी! जबतक जीता हूं

तबतक तो इसे भूखा नहीं रखूंगा। पर मेरे मरने के बाद यह कहां से खायगा, कौन इसके काम-काज का भार लेगा, मुझे तो इसकी चिंता के मारे रात-दिन चैन नहीं।"

मैं--"तो अब कहां ले जा रहे हो?"

ग्रामीण--"अब इसे घर लिये जा रहा हूं। कोई इलाज बाकी नहीं छोड़ा।"

मैं--"घबराओ नहीं। ऐसे तो सचमुच इस बच्चे की जिंदगी बरबाद हो जायगी।"

ग्रामीण--"तो फिर बहनजी, आप ही कुछ बताइये।"

मैं--"दिल्ली में एक ऐसा स्कूल है, जहां विकलांग या मानसिक रूप से पिछड़े हुए बच्चों का इलाज होता है। एक बार वहीं कोशिश कर देखो।"

ग्रामीण--"सच? ऐसा भी कोई स्कूल खुल गया? कहांपर है यह?"

मैं--"यह जनपथ में, फिल्म-ओडिटोरियम के पीछे है।"

ग्रामीण--"उसमें किस-किस बीमारी के बच्चे रखे जाते हैं?"

मैं--"ऐसे बच्चे, जिनके हाथ या पांव में लकवा मार गया हो, या जिनकी उंगलियां सख्त हो गई हों, या दिमाग काम न करता हो, बच्चे का मानसिक विकास ठीक से न हुआ हो, या बड़ी उमर के बालक का दिमाग एक शिशु के जैसा हो, या बच्चा गूंगा-बहरा हो। मतलब यह कि बच्चे में कोई-न-कोई ऐसी बात हो, जो दूसरे बच्चों में नहीं पाई जाती।"

ग्रामीण--"बहनजी, जब डाक्टर ठीक नहीं कर सके तो वे

कैसे ठीक कर देंगे इस बच्चे को।"

मैं--"देखो ! यह जरूरी नहीं कि बच्चा यहां ठीक ही हो जाय। पर एक तो यहां ऐसे बच्चे को अपना काम अपने-आप करने का ढंग सिखा दिया जाता है। दूसरे, कुछ कमा सकने योग्य चीजें भी सिखा देते हैं।"

ग्रामीण--"बहनजी ! आप तो पहेलियां बुझाती हैं। भला यह बच्चा अपने-आप काम-काज कैसे कर लेगा ?"

मैं--"यही तो आश्चर्य की बात है। सुनो भाई, एक तो वे रोज वैज्ञानिक ढंग से ऐसे बच्चे की मालिश करते हैं।"

ग्रामीण--"हां, बहनजी, मालिश तो इसे जरूर फायदा पहुंचायगी, पर मुझे तो इतना समय ही नहीं मिलता कि मैं रोज एक घंटे तक इसकी मालिश करूं।"

मैं--"फिर वे ऐसी कुर्सी बना देते हैं कि बच्चे के पांव की कसरत हो जाती है। जैसे एक टेढ़ी कुर्सी पर बच्चे को बैठा दिया। उसके पांव आगे से बांध दिये। कुर्सी के टेढ़े होने से वह फिसल जाता है। फिर वह हाथों के जोर से पीछे को खिसकने की कोशिश करता है। आगे-पीछे होने के कारण उसके पैरों की हालत में फर्क आना चाहिए। पर पांव बंधे होने के कारण हिल नहीं सकते। इसलिए उनपर जोर पड़ता है और धीरे-धीरे वे काम करने लगते हैं।"

ग्रामीण--"इस कुर्सी से क्या वह बिल्कुल ठीक हो जाता है?"

मैं--"इसके बाद उसे पैरों से चलनेवाली लकड़ी काटने-वाली एक मशीन दे देते हैं और लकड़ी काटना सिखाते हैं। लकड़ी काटने के लिए बार-बार पांव हिलाने पड़ते हैं, उससे पांवों में

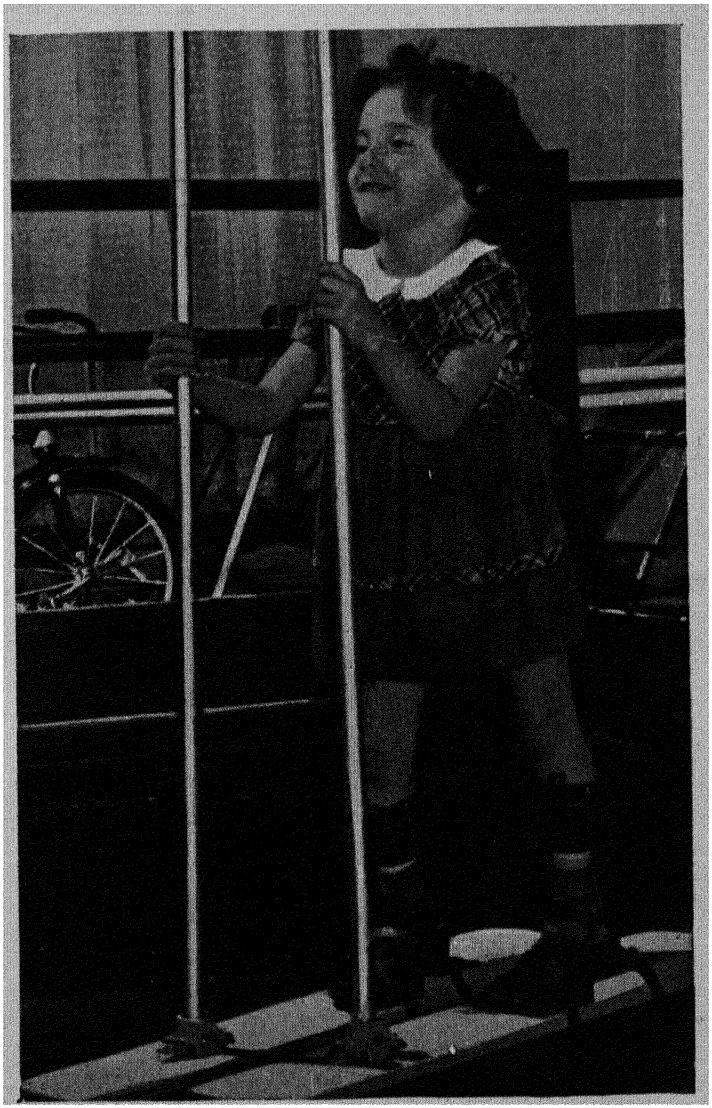

मजबूती आने लगती है।"

ग्रामीण—"तो इस तरह उन्हें कई-कई काम करने पड़ते हैं तब कहीं जाकर रोगी के पांव ठीक होते हैं?"

मैं—"केवल यही नहीं, पांव ठीक होने के साथ-साथ उसे लकड़ी की तरह-तरह की चीजें बनानी आ जाती हैं, जिनसे वह अपनी रोजी भी कमा सकता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, अगर यह इस लायक हो जाय तो मेरी सारी चिंता दूर हो जाय। और वहां क्या कराते हैं?"

मैं—"वहां बच्चे को पढ़ना-लिखना भी सिखाते हैं।"

ग्रामीण—"तब तो बहनजी, बहुत ही अच्छा है। पर जिसकी उंगलियां काम न करती हों, अकड़ गई हों, वह कैसे लिख सकेगा?"

मैं—"उसको ऐसे-ऐसे काम देते हैं, जिनसे उंगलियों की कसरत होती है।"

ग्रामीण—"जैसे?"

म—"जैसे रेशम की डोरियों से रस्सी बुनना, डोरी बुनना। बेंत का काम करना।"

ग्रामीण—"उससे उंगलियां चलने लगती हैं?"

मैं—"हां। शुरू-शुरू में बच्चे को अपनी उंगलियां मोड़ने में बहुत जोर लगाना पड़ता है, बहुत धीरे-धीरे काम करना शुरू करता है, पर फिर अभ्यास हो जाने से उंगलियों में मजबूती आ जाती है।"

ग्रामीण—"और?"

मैं—"कुछ मोटे-मोटे छेदों में लकड़ी के कसे हुए हैंडिल घुसा देते हैं। फिर उससे कहते हैं कि हैंडिल को निकालो। जोर लगाने

के लिए एक हाथ से वह कोई चीज पकड़ता है और दूसरे हाथ से कसकर हैंडिल पकड़ता है, उसे खींचता है। न खिचने पर हैंडिल को और जोर से पकड़ता है और कसकर खींचने की कोशिश करता है। इस तरह हैंडिल को पकड़ने और खींचने में मुट्ठी भींचनी पड़ती है। जब हैंडिल को छोड़ता है तो मुट्ठी खोलनी पड़ती है। रोज ऐसा करने से उसकी उंगलियों में ताकत आ जाती है और वे आसानी से मुड़ने लगती हैं।"

ग्रामीण––"बहनजी, ये काम तो डाक्टर लोग भी नहीं करते।"

मैं––"ऐसे बालक को उंगलियों के अभ्यास के लिए बेंत का जो काम सिखाया जाता है, उससे वह रोजी का एक तरीका भी सीख जाता है।"

ग्रामीण––"क्या उसको पढ़ाते भी हैं?"

मैं––"पढ़ाते तो सभीको हैं। जिनका दिमाग और हाथ ठीक होते हैं वे जल्दी पढ़ना सीख जाते हैं। जिनका दिमाग विकसित नहीं होता वे धीरे-धीरे पढ़ाई कर पाते हैं।"

ग्रामीण––"ऐसे दिमागवालों का क्या इलाज करते हैं, बहनजी?"

मैं––"उनको कोई-न-कोई ऐसा काम देते रहते हैं, जिसमें ध्यान जमाना आवश्यक हो। जैसे बेंत का ही काम है। बालक को कुर्सी या टोकरी बुनने में ध्यान लगाना ही पड़ेगा। हाथों के कामों में ध्यान बड़ी जल्दी जमता है। कालीन बुनना, धागों का जाल बनाना आदि काम भी मदद करते हैं।"

ग्रामीण––"और?"

मैं––"ऐसे बच्चे बागबानी बड़ी रुचि से करते हैं और बहुत

अच्छी। इसलिए इन बच्चों का सारा सुधार हाथ के काम द्वारा कराया जाता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, मैं तुम्हारा अहसान उमरभर नहीं भूलूंगा, मुझे इतना और बता दो कि वहां खर्चा कितना आता है?"

मैं—"गरीब बच्चों को वहां मुफ्त रखते हैं, पैसेवालों से फीस लेते हैं।"

ग्रामीण—"लेकिन बहनजी, मैं तो दिल्ली में रह नहीं सकता।"

मैं—"भई, इसमें परेशानी की क्या बात है? बाहर के, खासकर दूर रहनेवाले, बच्चों को वहीं रखा जाता है?"

ग्रामीण—"उसके वहीं रहने और खाने का तो खर्चा आयगा?"

मैं—"मैंने कहा न कि गरीब बच्चों से तो कुछ भी नहीं लिया जाता। पर ऐसे बच्चे जिनके मां-बाप पैसा खर्च कर सकते हैं और वहीं रहते हैं, उनसे अस्सी रुपये मासिक लिया जाता है। उसमें रहना, खाना-पीना, इलाज, पढ़ाई सब कुछ आ जाता है।"

ग्रामीण—"और जो दिन में आते हैं, शाम को घर लौट जाते हैं, उन्हें क्या देना पड़ता होता है?"

मैं—"उनका पचास रुपया खर्च आता है। पर उन्हें भी दिन में खाने के लिए स्कूल से नाश्ता दिया जाता है।"

ग्रामीण—"बहनजी, मैं अभी बच्चे को वहीं ले जाऊंगा।"

मैं—"परमात्मा करे, तुम्हारा बच्चा अच्छा हो जाय।"

: ८ :

अंध-विद्यालय

मैं—"अरे शिशिर, आज तू जल्दी कैसे आ गया स्कूल से ? अभी तो तीन भी नहीं बजे । तेरी छुट्टी तो चार बजे होती है न ?"

शिशिर—"हां अम्मा, आज हमारे स्कूल में टीका लगा था, इसलिए जल्दी छुट्टी हो गई ।"

मैं—"टीका ! कैसा टीका ?"

शिशिर—"चेचक का टीका, अम्मा ।"

मैं—"ओह ! हां, ठीक है, दिल्ली में चेचक बहुत फैल रही है, कल ही तो अखबार में पढ़ा था ।"

शिशिर—"अम्मा, सुना है चेचक में आंखें जाती रहती हैं ?"

मैं—"नहीं बेटा ! सबकी नहीं, पर जिनके बहुत जोर की निकलती हैं, और ठीक से देखभाल नहीं होती, उनमें बहुतों की जाती रहती हैं ।"

शिशिर—"तो क्या जितने अंधे हैं, वे सब चेचक के रोग में ही अंधे हुए हैं ?"

मैं—"नहीं, कुछ जन्म से ही अंधे होते हैं। कुछ की आंखें जब बहुत जोर से दुखनी आती हैं और इलाज ठीक से नहीं हो पाता तो जाती रहती हैं, या कोई और रोग हो जाय तो आंखों की ज्योति चली जाती है ।"

शिशिर—"हाय अम्मा, वे बेचारे कैसे अपनी ज़िंदगी काटते होंगे ?"

शरत—"बहुत-से अंधे आदमी भीख मांगने लगते हैं ?"

मैं—"हां ! जब बचपन में ही किसी अंधे बालक की परवाह न की जाय, तो बाद में भीख मांगने के सिवा उनके पास कोई चारा ही नहीं रह जाता।"

शरत—"परवाह से क्या मतलब ?"

मैं—"परवाह से मतलब यही कि यदि उन्हें किसी प्रकार का प्रशिक्षण न दिया जाय तो उनके पास रोज़ी का साधन ही क्या रह जाता है ?"

शिशिर—"क्या अंधे आदमियों को भी किसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जा सकता है ?"

मैं—"हां, क्यों नहीं ? अंधों के कान की शक्ति और छूने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। हम आंखों से देखकर सबकुछ समझने-बूझने में जो शक्ति लगाते हैं, वही शक्ति ये वस्तुओं को छूने और सुनने में खर्च करते हैं, इसलिए इनकी ये दो इंद्रियां बहुत ही तीव्र हो जाती है।"

हेमंत—"तो इन्हें प्रशिक्षण कौन देता है ?"

मैं—"कुछ समाज-सेवियों ने, सरकार ने और दूसरी संस्थाओं ने ऐसे स्कूल खोल रखे हैं जहां संगीत, कुछ हाथ का काम और कुछ पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है।"

शिशिर—"हां, हमें याद है, हम पिछले साल जब एक सांस्कृतिक कार्यक्रम देखने गये थे तो सबसे पहले अंधे छात्रों ने मिलकर वाद्य-वृंद प्रस्तुत किया था। हम तो सभी सोच रहे थे कि अंधे कैसे इतना अच्छा बजा लेते हैं।"

अंधे छात्रों द्वारा वाद्यवृन्द

मैं—"हर अंध-विद्यालय में हर छात्र को संगीत विद्या अवश्य दी जाती है, क्योंकि इनके कान बहुत तेज़ होते हैं। और यह तो तुम समझते ही हो कि संगीत आंखों की नहीं, बल्कि कानों की चीज़ है।"

शिशिर—"और तुम कहती थीं कि उन्हें पढ़ाया भी जाता है, सो कैसे ? उसमें तो आंखों के बिना काम नहीं चलता।"

मैं—"बेटे, उन्हें शिक्षा की सामान्य पद्धति द्वारा नहीं पढ़ाते। उन्हें जिस पद्धति से पढ़ाया जाता है वह 'ब्रेल-पद्धति' कहलाती है। उसमें आंखों के बिना भी निर्वाह हो जाता है।"

हेमंत—"वह क्या होती है ?"

मैं—"कागज पर उभरे हुए अक्षरों को 'ब्रेल-पद्धति' कहते हैं। जिस प्रकार हम अपनी दृष्टि से जल्दी-जल्दी अक्षरों को पहचान जाते हैं उसी प्रकार वे हाथ लगाते ही स्पर्श से झट अक्षरों को पहचान जाते हैं।"

शरत—"इस पद्धति से वे कहांतक पढ़ लेते हैं ?"

मैं—"दिल्ली के पास बदरपुर गांव है। वहां जो अंध-विद्यालय है, उसमें ब्रेल-पद्धति से आठवीं तक सब छात्रों को अवश्य पढ़ाया जाता है। सबको संगीत की शिक्षा भी अवश्य मिलती है।

इनमें से कुछ छात्र बाद में जाकर बहुत अच्छे संगीतज्ञ बन जाते हैं और संगीत सिखाकर अपनी जीविका कमाते हैं।"

शिशिर—"जो लोग बहुत अच्छा संगीत नहीं सीख पाते वे बिचारे कहां भटकते हैं?"

मैं—"वे भटकेंगे क्यों? उनके लिए और बहुत-से उद्योग हैं।"

हेमंत—"जैसे?"

मैं—"जैसे बेंत की कुर्सी बुनना, टोकरी बुनना, कपड़ा, दरी, निवाड़, कालीन इत्यादि बुनना, बढ़ई का काम, चमड़े का काम और दर्जी का काम करना।"

शिशिर—"सच अम्मा? क्या अंधे दरी और कालीन भी बुन सकते हैं?"

उद्योग शिक्षा

मैं—"हां, स्पर्श से वे ताना-बाना बुनना सब सीख जाते हैं। अलग-अलग रंगों के धागे अलग-अलग डब्बों में रखे होते हैं, उन डब्बों पर उभरे हुए अक्षरों द्वारा रंग का नाम लिखा होता है। बस वे हिसाब से उसी रंग का धागा निकालते जाते हैं और बुनते जाते हैं। पहले वे कागज़ पर उभरा हुआ डिज़ाइन बनाकर याद कर लेते हैं कि जैसा डिज़ाइन बनाना है।"

शरत—"और जब दरी और कालीन वे बुन सकते हैं तो बेंत की कुर्सी बुनने में तो कोई मुश्किल है ही नहीं।"

मैं—"इसी तरह स्पर्श से वे चमड़े का काम, दर्जी का काम और बढ़ई का काम भी कर लेते हैं। जिस काम पर वे बैठ जाते हैं उसें बड़ी लगन से और ध्यान से करते हैं। काम में बड़ी सफाई आती है।"

शिशिर—"जब ये काम सीख जाते हैं तब कहां जाते हैं, आर्डर लाने और काम ले जाने का काम कौन करता है?"

मैं—"जितने दिन ये स्कूल में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, उतने दिन इनके किये हुए काम पर से जो आमदनी होती जाती है, उसमें से एक-चौथाई उस छात्र को दे दी जाती है। जब छात्र उस स्कूल को छोड़ता है तो उसे वह पूंजी मिल जाती है।"

हेमंत—"उस पूंजी का वह क्या करता है?"

मैं—"उस पूंजी से वह बुनाई का सामान या बुनाई की मशीन खरीद लेता है। स्कूल के ज़रिए किसी व्यापारी से बातचीत कर लेता है, अपना बनाया हुआ माल उसे ले जाकर दे देता है और मजदूरी उसे मिल जाती है।"

शिशिर—"इस समय भारत में कुल कितने अंध-विद्यालय होंगे?"

मैं—"भारत में इस समय तिहत्तर ऐसे स्कूल हैं।"

शरत—"उनमें कितने बालक होंगे ?"

मैं—"उनमें लगभग तीन हजार ऐसे बालक व बालिकाएं होंगी।"

हेमंत—"अच्छा अम्मा, एक बात बताओ। जो बच्चे दिल्ली में नहीं रहते, कहीं गांव में रहते हैं, वे कैसे स्कूल आते-जाते होंगे।"

मैं—"देखो, हर अंध-विद्यालय के साथ-साथ उस विद्यालय का होस्टल भी रहता है, जहां छात्र रहते हैं और उनके खाने-पीने का प्रबंध भी स्कूल की ओर से ही होता है। मुफ़्त'

शरत—"फिर तो कोई कठिनाई की बात नहीं है।"

मैं—"हां, वहीं रहना और वहीं काम-काज सीखना,,

शिशिर—"अच्छा इनका खर्च कहां से निकलता है ?"

मैं—"कुछ सरकार देती है, कुछ दान और चंदा जमा किया जाता है।"

शिशिर—"यह तो हुआ अंधों के लिए। जो गूंगे और बहरे होते हैं, उनकी शिक्षा-दीक्षा का भी कोई प्रबंध है क्या ?"

मैं—"हां, है। है क्यों नहीं ?"

शिशिर—"क्या ?"

मैं—"देखो अब देर हो रही है। तुम्हें अपने स्कूल का काम करना है, इसलिए गूंगे-बहरों के स्कूल के बारे में कल बताऊंगी।"

: ९ :

गूंगे-बहरों का स्कूल

शिशिर––"अम्मा, एक बात बताओ।"

मैं––"क्या ?"

शिशिर––"फिरोज़ शा कोटला के पीछे जो एक बड़ा-सा स्कूल है, वह कौन-सा स्कूल है ?"

मैं––"वह गूंगे-बहरों का स्कूल है। उसका नाम है लेडी नोयस स्कूल।"

शिशिर––"उस स्कूल में क्या होता है ?"

मैं––"वहां गूंगों और बहरों को पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है।"

शिशिर––"भला गूंगे और बहरे कैसे पढ़-लिख सकते हैं ? वे न तो कुछ सुन ही सकते हैं, न बोल ही सकते हैं।"

मैं––"इसलिए उन्हें पहले बोलना सिखाया जाता है, ओठों व जिह्वा की गति से दूसरे के बोल पहचानना सिखाया जाता है, उसके बाद उन्हें पढ़ना-लिखना सिखाया जाता है।"

शरत––"क्या वे सीख जाते हैं ?"

मैं––"हां, पढ़ना, लिखना और हाथ के काम सब सीख जाते हैं। इतना अवश्य है कि किसीको अधिक सफलता मिलती है किसी-को कम।"

शरत––"जनम के गूंगे-बहरों को बोलना कैसे सिखाते है?"

मैं—"ऐसे। मास्टर 'अ' कापी पर लिखता है। फिर उसे बोलता है और गूंगे बच्चे का हाथ अपने कंठ पर रख लेता है। बच्चा उसकी जिह्वा, ओंठ को देखकर और कंठ के कंपन को अनुभव करके वैसा ही स्वर अपने कंठ से निकालने का प्रयत्न करता है।"

शिशिर—"फिर क्या वह 'अ' बोलने लगता है?"

मैं—"हां, जब मास्टर बार-बार दोहराता है तो बच्चा भी बोलने लगता है।"

शिशिर—"क्या कंठ पर हाथ रखने से सब अक्षर आ जाते हैं?"

मैं—"नहीं, केवल कंठ पर ही नहीं, बल्कि उसके हाथ मास्टर अपने गालों पर भी रखता है। मुंह के आगे रखता है, नाक के नथुने पर रखता है, ताकि वह गालों का हिलना समझ सके। स्वर निकालते समय मुंह से कैसे हवा निकलती है, उसको जान सके। नाक से निकलनेवाले स्वर नथुनों की हरकत से मालूम हो जाते हैं।

शिशिर—फिर वे ठीक-ठीक बोलने लगते हैं?"

मैं—"हां, बोलने लगते हैं।"

शरत—"क्या फिर कुछ भी समझाने के लिए हर बार मास्टर को बच्चे के हाथ अपने मुंह पर रखने पड़ते हैं?"

मैं—"नहीं, हमेशा नहीं। शुरू-शुरू में सिखाने के लिए ही यह प्रयोग करना पड़ता है। बाद में तो बच्चों को इतना अभ्यास हो जाता है कि वे दूर बैठे ही मास्टर के मुंह के हिलने से उसकी सारी बात समझ लेते हैं।"

शिशिर—"फिर पढ़ना-लिखना कैसे सीख जाता है?"

मैं—"गूंगे-बहरे की स्मरण-शक्ति बहुत तीव्र होती है। इसलिए 'अ' बोलने के साथ-साथ कापी पर 'अ' लिखा देख लेता है तो उसे वह लिख भी सकता है और पढ़ भी सकता है।"

शरत—"क्या इसी प्रकार वह आगे पढ़ना-लिखना सीखता जाता है?"

मैं—"हां! उसकी अपनी कोई भाषा नहीं होती। वह जनम से बहरा होने के कारण कोई भी बोली नहीं जानता, अतः उसे चित्र दिखाकर और बोलकर, पढ़ाकर, सबकुछ समझाते हैं। उसे कहानियां समझाने के लिए दृश्यों के कई-कई चित्र बनाने पड़ते हैं और चित्रों के द्वारा उसे जानवरों के नाम, चीजों के नाम, फल और सब्जियों के नाम बताये जाते हैं।"

शिशिर—"वहां कितने साल का पाठ्य-क्रम होता है?"

मैं—"वहां पांच साल का पाठ्य-क्रम होता है।"

शिशिर—"इसके बाद?"

मैं—"इसके बाद उसे और स्कूलों की पहली-दूसरी कक्षा की तैयारी कराई जाती है।"

शरत—"पांच साल के बाद भी बच्चा पहली में ही रह जाता है!"

मैं—"हां, पांच साल में वह ठीक से बोलना, लिखना, पढ़ना और समझना ही सीख पाता है। इसमें बहुत धीरज की जरूरत है। मास्टर भी कई-कई दिन की कोशिश के बाद बच्चे को एक स्वर ही सिखा पाता है। और बच्चे को भी अपने कंठ से स्वर निकालने के लिए बहुत कोशिश करनी पड़ती है।"

मैं—"पढ़ना-लिखना आने के बाद उन्हें चित्र बनाना, हिसाब लगाना, हिंदी का थोड़ा-बहुत व्याकरण सिखाया जाता है।"

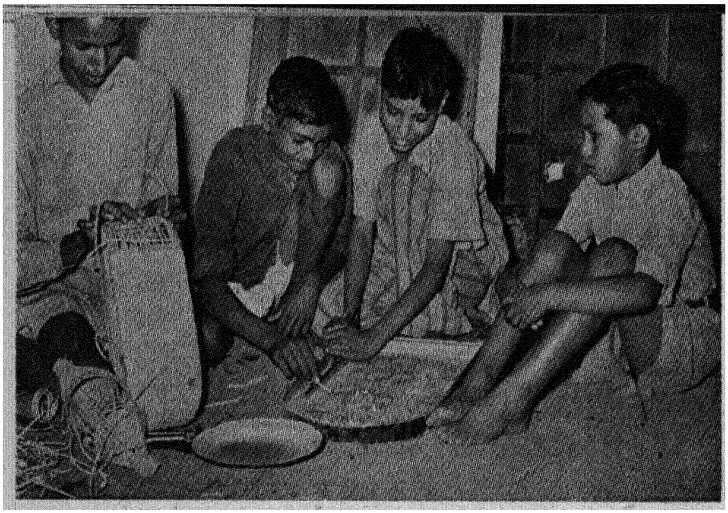

दस्तकारी

हेमंत—"उन्हें हाथ का काम क्या-क्या सिखाते हैं?"

मैं—"बढ़ईगिरी, दरजीगिरी, बेंत का काम, खड्डी पर कपड़ा बुनना, मशीनों पर सूत कातना और मशीन से बनियान और मोजे बुनना।"

शिशिर—"हाथ का काम करने के लिए कितना समय रोज देते हैं?"

मैं—"दो घंटे।"

शरत—"हर बच्चे को हर चीज सिखाई जाती है या एक-दो चीजें?"

मैं—"एक बच्चे को दो काम ही सिखाये जाते हैं। जो बालक जिन कामों में रुचि दिखाता है, उसे वे ही दो चीजें सिखाई जाती हैं। इन कामों के सिखाने से वे आत्म-निर्भर हो जाते हैं।"

शिशिर—"अच्छा, इनके ऊपर कितना खर्च आ जाता है?"

मैं—स्कूल में कोई फीस नहीं लगती। स्कूल के साथ छात्रावास भी है। वह भी मुफ्त। ग़रीब और अमीर दोनों खर्च की तरफ से बेफिकर हो अपने बच्चे यहां दाखिल कर सकते हैं।"

हेमंत—"इन्हें कहीं घुमाने भी ले जाते हैं?"

मैं—"हां, उन्हें बाहर ले जाकर चीजें दिखाते हैं और वे उन्हें देखकर जल्दी समझ जाते हैं।"

: १० :

परित्यक्त शिशु-गृह

प्रातः आंख खुली तो देखा, बाहर खूब हो-हल्ला हो रहा था। कई मर्द-औरतें जमा थे। कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ। सबके बीच में साइकिल की एक टोकरी रखी थी, जिसमें से एक शिशु का धीमा रुदन उठ रहा था। सड़क की जमादारिन हाथ मटका-मटकाकर चिल्ला रही थी, "यह देखो किसी कुल्टा के काम। किसीके पाप की कमाई।"

मैं—"इतना चिल्ला क्यों रही है ? आखिर ऐसा हो क्या गया है ? किसका बच्चा है यह ?"

जमादारिन—"लो, सुन लो। मैं भला क्या जानूं, किसका बच्चा है ?"

मैं—"जब तुझे नहीं मालूम तो क्यों उसे गाली दे रही है ?"

जमादारिन—"लो और सुन लो। पाप की कमाई नहीं होती तो कोई उसे यों सड़क पर छोड़ देता ?"

एक आदमी—"कहां पाया तूने इसे ?"

जमादारिन—"मैं तड़के ही सड़क बुहार रही थी तो मैंने फसील के पास इस टोकरी को पड़े देखा।"

दूसरा आदमी—"फिर ?"

जमादारिन—"फिर क्या, मैंने सोचा, कोई आदमी यहीं आसपास कुछ काम कर रहा होगा, थोड़ी देर में आकर उठा ले जायगा।"

मैं—"कोई आया ?"

जमादारिन—"नहीं बीबीजी, आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता, पर कोई न आया। यह सुंदर-सी नई टोकरी देखकर मुझे भी कुछ शक होने लगा।"

एक आदमी—"फिर ?"

जमादारिन—"इतने में टोकरी में से रोने की आवाज आने लगी। मेरा बड़ा मन करने लगा कि इसे खोलकर देखूं।"

मैं—"खोला क्यों नहीं ?"

जमादारिन—"कैसे खोल लेती, बीबीजी, कोई कह देता कि मैं ही किसीकी चोरी कर लाई हूं, या किसीने मेरे जरिये ही यह काम कराया है तो क्या होता ? किसीका मुंह थोड़े ही रोक सकती हूं।"

एक आदमी—"फिर क्या हुआ ?"

जमादारिन—"फिर क्या ? दो-चार आदमियों को जमा किया। उनके सामने टोकरी खोली तो उसमें यह निकला।"

दूसरा आदमी—"कितना सुंदर बच्चा है यह। जाने मां का कैसे दिल किया होगा, उसको छोड़ते हुए।"

मैं—"जीहां, सुंदर तो है यह, पर नहीं छोड़ती तो क्या समाज उसे छोड़ता ? अब तो बस बच्चे की ही मुसीबत है, और तब बच्चे और बच्चे की मां, दोनों की ही मुसीबत रहती।"

दूसरा आदमी—"हां, तुम ठीक कहती हो ? इस बिचारे बच्चे को पैदा करने में तो स्त्री और पुरुष दोनों का ही हाथ रहा होगा, पर गाली खानी पड़ती बिचारी स्त्री को। सब कहते, कुल में दाग लगा दिया। कुलटा है। कुलच्छिनी है। शायद उसे घर से भी निकाल दिया जाता।"

मैं—"जीहां, आप ठीक कहते हैं। जहां जाती, वहीं से निकाल दी जाती। दर-दर ठोकरें खाती। तब कहां से तो खुद खाती और कहां से इस बच्चे को खिलाती?"

एक आदमी—"जीहां, समाज ही इन सब अभागों का जिम्मेदार है।"

मैं—"समाज की गलती का दंड इस बेचारे नन्हें मुन्ने को क्यों दिया जा रहा है?"

जमादारिन—"हां, बीबीजी, इसमें भी तो वैसी ही जान हैं जैसी और बच्चों में। वैसे ही दो कान, दो आंख, एक नाक, एक मुंह। क्या खराबी है इसमें, जो इसे पैदा होते ही इसकी मां से छुड़ा दिया गया? ऐसे बच्चे तो अपनी मां-बाप की छाती से चिपटे रहते हैं।"

एक औरत—"हाय राम! कसा पत्थर-सा कलेजा होगा, उसका, जो ऐसे प्यारे बच्चे को यों छोड़ गई। हाय, मैं तो मर जाती, पर बच्चे को कभी न छोड़ती।"

जमादारिन—"माताजी, इतनी ममता है तो तुम्हीं पाल लो इसे। देखो कितनी कीमती शाल में इसे लपेट कर रखा है और यह दूध की बोतल भी साथ में रख दी है।"

औरत—"अरी हां, मैं ही फालतू हूं जो पाप की औलाद पालती फिरूं। न जाने किस जाति का है। मैं तो हाथ भी न लगाऊं इसे।"

मैं—"देखो बहनजी, बने तो सभी हाड़-मांस के हैं। जाति तो सबकी एक ही है, मानव-जाति। नहीं पालना चाहतीं तो मत पालो, पर ऐसी बात मुंह से न निकालो।"

औरत—"अरे वाह, ऐसी हमदर्दी ही है, तो क्यों नहीं

इंतजाम कर देतीं। हम भी जानें कि बहुत दया है आपके दिल में।"

मैं—"ठीक है। मैं इसका इंतजाम कर दूंगी। चल री जमादारिन जरा इस बच्चे को लेकर मेरे साथ चल।"

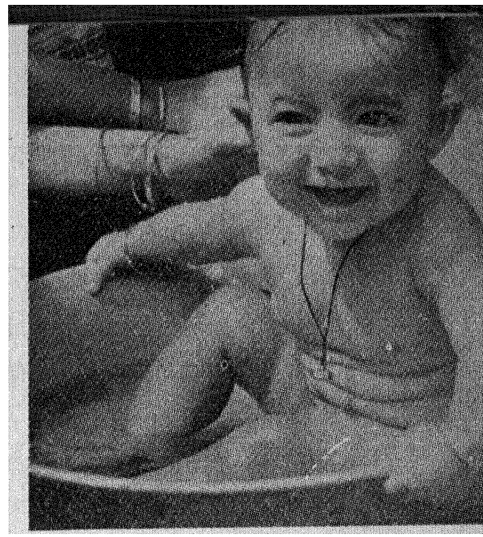

नहाने का आनंद

जमादारिन—"कहां ले चलोगी?"

मैं—"मूर्तिदेवी हस्पताल में।"

एक आदमी—"वहां क्या होता है?"

मैं—"वहां इसे पाला जायगा।"

जमादारिन—"सच, बीबीजी? इस बालक का कोई ठिकाना लग जाय तो मैं जरूर साथ जाऊंगी।"

दूसरा आदमी—"लेकिन हस्पताल में इसे कौन पालेगा? नर्स? अगर उसने भी इसकी जिम्मेदारी नहीं ली तो?"

मैं—"वहां नगर-निगम ने ऐसे बच्चों के लिए विशेष प्रबंध कर रखा है। वहां ऐसे बच्चों के लिए हस्पताल में एक-दो कमरे हैं। उनमें बच्चों के लिए बहुत सारे पालने हैं। कई नर्सें बारी-बारी से इनकी देखभाल करती हैं और नहलाती-धुलाती हैं।

जमादारिन—"बीबीजी, उन्हें दूध कौन देता है?"

मैं—"समय पर वही नर्सें दूध भी देती हैं। कपड़ों, दवा-दारू, नर्सों आदि के साथ-साथ हस्पताल का भी सारा खर्चा नगर-निगम उठाता है।"

एक औरत—"बच्चे कबतक वहां रहते हैं? बड़े होकर कहां चले जाते हैं?"

मैं—"वहां बच्चों को गोद दे देते हैं।"

औरत—"इन्हें कौन गोद लेता होगा?"

मैं—"बहुत-से ऐसे आदमी होते हैं, जिनमें दया, माया, ममता होती है। उनके जब अपने बच्चे नहीं होते तो वे यहां से गोद ले लेते हैं।"

एक आदमी—"यों तो कोई भी इन बच्चों को ले जाता होगा?"

मैं—"जी नहीं, हरेक आदमी को नहीं देते। गोद लेनेवाला अच्छी आमदनीवाला, अच्छे कुल का और सच्चरित्र होना चाहिए। जो गोद लेना चाहता है, वह पहले दो रुपये के टिकट लगे हुए फार्म पर, मजिस्ट्रेट के हस्ताक्षर करवाकर, निगम के अध्यक्ष के पास आवेदन भेजता है। यदि उसकी आमदनी लगभग तीससौ रुपये से कम न हो, उसके पहले कोई बच्चा न हुआ हो और आगे भी बच्चा होने की संभावना न हो तो फिर उसकी जांच करवाई जाती है।"

एक आदमी—"अगर जांच ठीक निकले तो?"

मैं—"तो उसे सब बच्चे दिखा दिये जाते हैं। उनमें से जो उसे पसंद आ जाता है उसे वह दे दिया जाता है, बकायदा लिखत-पढ़त करके।"

दूसरा आदमी—"गोद लेनेवाले बहुत आते हैं या थोड़े?"

मैं—"मांगनेवाले तो इतने आते हैं कि उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ती हैं। प्रतीक्षा करनेवालों की सूची पर कितने ही नाम चढ़े

रहते हैं। जैसे ही कोई लड़का आता है, फौरन किसी-न-किसीकी गोद चला जाता है।"

औरत--"और लड़की ?"

मैं--"लड़की को मांगनेवाले जरा कम आते हैं। लड़की तो वहां एक-एक साल की हो जाती हैं। एक लड़की तो वहां ढाई साल की थी। पर अब वह भी चली गई।"

दूसरी औरत--"बच्चा डालनेवाली से सब पूछताछ की जाती होगी। क्या वह सब बता देती है ?"

मैं--"नहीं, न वह बताती है और न कोई उससे कुछ पूछता है।"

एक आदमी--"तो फिर ? आखिर वह किसीको तो बच्चा सौंपती ही होगी ?"

मैं--"नहीं, अस्पताल के बाहर आलमारी में एक पालना बना रखा है। उससे एक तार जोड़ रखा है, जो अंदर लगी हुई घंटी से जुड़ा हुआ है।

एक औरत --"फिर ?"

मैं--"फिर क्या ? लानेवाले आदमी बच्चे को उस पालने में डाल देते हैं। पालने पर बोझ पड़ते ही घंटी बज उठती है और अंदर से डाक्टर आकर बच्चे को उठा ले जाती है।"

एक आदमी--"यह तो नगर-निगम ने बहुत अच्छा किया। न जाने कितनी हत्याएं इससे बच गईं।"

जमादारिन--"चलो, बीबीजी, देर हो रही है। बच्चा रोने लगा है। मुझे भी काम करना है।"

: ११ :

अविवाहित माता-गृह

एक महिला—"अरी सुनती हो ?"

मैं—"क्या ?"

महिला—"आज जब हम बस में से जी० बी० रोड से गुजर रहे थे तो हमने भागो को कोठे पर देखा।"

मैं—"कौन भागो ?"

महिला—"वही, कोनेवाले मकानवालों की दूसरी लड़की।"

मैं—"अच्छा, वह, जिसे गर्भ रह गया था ?

महिला—"हां-हां, वही जो कुंआरेपन में गर्भवती होगई थी।"

मैं—"तो बहन, ऐसी लड़कियों के मां-बाप को सोचना चाहिए था कि हम लड़की को घर से निकाल रहे हैं तो आखिर वह जायगी कहां ? पढ़ी-लिखी वह थी नहीं कि कहीं नौकरी करके अपना पेट भर लेती !"

महिला—"कहीं चौका-बरतन ही कर लेती !"

मैं—"पर वह रहती कहां ! जहां भी अकेली रहती, वहीं सब उसे छेड़ते। गुंडों और अवारा लोगों की कमी नहीं है। छोटी उमर की, बिना पढ़ी-लिखी, देखने में सुंदर, भला कौन उसे छोड़ता !"

महिला—"तो उसने ऐसा किया ही क्यों ? यह कुकर्म न करती।"

मैं—"भला तुम्हीं बताओ, जब मां-बाप की रक्षा में रहनेवाली को बदमाश ने नहीं छोड़ा तो अकेली को छोड़ देता ?"

महिला—"पुरुष को ही बदमाश क्यों कह रही हो ? क्या पता, इसीका दोष हो ?"

मैं—"अगर वह बदमाश न होता तो जब इसके मां-बाप ने इसे निकाल दिया था तो उसे चाहिए था कि इसके रहने का प्रबंध करता, इससे ब्याह करता, और ब्याहता स्त्री की तरह इसका सम्मान करता।"

महिला—"तो बहन, मां-बाप भी क्या करते ? उन्हें भी तो अपनी इज्जत बचानी थी।"

मैं—"अब क्या इज्जत बच गई ? अब तो और डूब गई !"

महिला—"तो आखिर वे करते क्या ? कुछ तुम भी तो बताओ कि उनके पास उपाय ही क्या रह गया था।"

मैं—"किसी डाक्टर से सलाह लेनी थी।"

महिला—"हाय-हाय, ऐसा पाप ? गर्भ गिरवा देती ? हत्या करती ?"

मैं—"तब ज़िंदगी में एक की हत्या होती, अब वह रोज एक गिराती होगी ? तुम्हें पता है ?"

महिला—"हां, यह तो ठीक कहा ! पर उसका तो पता ही बहुत देर में लगा ? पूरे छः महीने चढ़ गये थे।"

मैं—"सबसे पहले तो उन्हें लड़के की खोज करनी चाहिए थी। अगर वह लड़का, जिसका यह काम है, अच्छा हो, योग्य हो तो दोनों को ब्याह देना चाहिए था। एक साल के लिए कहीं बाहर रह आती, दूर मोहल्ले में मकान ले लेती तो किसीको

पता भी न चलता कि शादी और बच्चे के जनम के बीच कितने दिन गुजरे !"

महिला—"तुम्हें तो मालूम है कि यह कांड बग़लवालों के ड्राइवर ने किया था। भला वे इतने बड़े आदमी, ड्राइवर के साथ कैसे ब्याह देते ?"

मैं—"ठीक, तो ऐसे में दो तरीके हैं।"

महिला—"क्या ?"

मैं—"अगर उसके मां-बाप उसे कहीं दूर कुछ दिन के लिए रख सकते, तो बच्चा हो जाने पर उसे परित्यक्त शिशु-गृह में डाल आते, और लड़की को स्वस्थ होने पर घर ले आते।"

महिला—"परित्यक्त शिशु-गृह कौन-सा है ?"

मैं—"वही, जिसके बारे में उस दिन मैं बता रही थी।"

महिला—"किस दिन ?"

मैं—"अरे, जब जमादारिन को दीवार के पास टोकरी में एक बच्चा पड़ा मिला था !"

महिला—"हां-हां, याद आया, मूर्तिदेवी अस्पताल, वही दिल्ली गेट के पास।"

मैं—"हां-हां, वही।"

महिला—"हां, यह भी हो सकता था कि मां-बेटी तीन-चार महीनों के लिए कहीं बाहर चली जातीं और बच्चा पैदा होने पर परित्यक्त शिशु-गृह में डाल आतीं। बच्चा पल जाता, किसी अच्छे घराने में गोद चला जाता और किसीको कानों-कान इसका पता भी न चलता।"

मैं—"हां, देखो ना, उसे वेश्या बनाने की बजाय तो

यही अच्छा था। उनकी नाक भी बनी रहती, लड़की भी न बिगड़ती। बाद में जल्दी-से-जल्दी योग्य वर ढूंढ़कर लड़की की शादी कर देनी चाहिए थी।"

महिला—"लेकिन इसकी मां के तो कई छोटे-छोटे बच्चे हैं। वह उन्हें कैसे छोड़कर कई महीनों के लिए कहीं चली जाती!"

मैं—"तो फिर उन्हें चाहिए था कि लड़की को बंबई भेज देते।"

महिला—"बंबई! वहां क्या होता है?"

मैं—"वहां एक ऐसा केंद्र है, जिसमें बच्चा होने के समय तक लड़की को रखते हैं।"

महिला—"अच्छा! जबसे लड़की को गर्भाधान के लक्षण नजर आते हैं तबसे लेकर बच्चे के होने तक के समय के लिए वह वहीं रहती है! क्या यह सच है?"

मैं—"हां, यह बिलकुल सच है! नासमझ भोली-भाली बालिकाओं के कल्याण के लिए और समाज के अत्याचार से उन्हें बचाने के लिए यह केंद्र खोला गया है।"

महिला—"लेकिन वहां बाद में बच्चे का क्या होता है? जनम देनेवाली मां तो उसे अपने साथ लाती नहीं।"

मैं—"नहीं, वहां दाखिल होने से पहले गर्भवती लड़की से एक फार्म पर दस्तखत करवा लेते हैं कि वह बच्चे से बाद में कोई संपर्क नहीं रखेगी। उसके मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी।"

महिला—"तो क्या वह उसे वहां छोड़ देती है?"

मैं—"हां, फिर बच्चे को किसी अच्छे घराने में गोद दे दिया जाता है।"

महिला—"क्या उसे छोड़ते समय मां के दिल में ममता नहीं

होती ?"

मैं—"ममता होती है, अगर मां एक बार बच्चे को देख ले तो। बिना देखे उतनी अधिक ममता नहीं होती।"

महिला—"तो, वे लोग क्या करते हैं ?"

मैं—"वे बच्चे को पैदा होते ही अलग कर देते हैं। उसे मां को दिखाते नहीं।"

महिला—"अच्छा ! मां को उसे दिखाते ही नहीं ! हां, यह ठीक है। फिर ?"

मैं—"फिर स्वस्थ होने पर मां अपने मां-बाप के पास चली जाती है।"

महिला—"लेकिन जो लड़कियां बच्चे को अलग करना नहीं चाहती, उनका क्या होता है ?"

मैं—"वे फिर अधिकारियों से प्रार्थना करती हैं कि कुछ दिन के लिए वे बच्चे को पाल लें, बाद में वह कोई प्रबंध कर लेगी।"

महिला—"प्रबंध क्या कर लेगी ? कैसे कर लेगी ?"

मैं—"उसके घर में कोई रिश्तेदार विवाह के बाद भी बिना बच्चे का हो तो वे उस बच्चे को गोद ले लेते हैं। इस प्रकार घर का बच्चा घर में ही रहता है और मां-बाप की इज्जत में बट्टा भी नहीं लगता।"

महिला—"भई, यह तो बहुत अच्छी बात सुनाई तुमने। अब अगर कहीं हम ऐसी बात देखेंगे तो मां-बाप को यही सलाह देगें कि लड़की को बाजारू औरत बनाने की बजाय अविवाहित माता-गृह में ले जायं। लेकिन जिनके मां-बाप बहुत कट्टर हों और लड़की को घर में रखना पाप समझें तो ?"

मैं—"तो ऐसी लड़कियों को वहीं बच्चे के साथ रख लेते हैं। उसे कुछ काम-काज सिखाकर कहीं काम पर लगाने की कोशिश करते हैं। कुछ पढ़ा भी देते हैं। मतलब यह कि उसे जिंदगी काटने का सहारा दे देते हैं।"

महिला—"और जो लड़की बहुत चंचल हो, ब्याह करके गृहस्थी जमाना चाहे तो ऐसी लड़कियों का क्या करते हैं?"

मैं—"ऐसी लड़कियों के लिए यदि योग्य वर मिल जाय, जो ऐसी लड़की से ब्याह करना बुरा न माने तो उसे ब्याह भी देते हैं।"

महिला—"यह तो और भी अच्छा है। वह भले घरों की तरह घर बसा सकती है। इज्ज़त के साथ रह सकती है।"

मैं—"अच्छा बहन, अब चलें। देर हो रही है।"

: १२ :

नारी-निकेतन

पड़ोसिन––"नमस्ते बहन। कल तुमने मुझे इतनी बातें बताईं। पर मैं एक बात पूछना भूल गई।"

मैं––"वह क्या ?"

पड़ोसिन––"यही कि भागो को कीचड़ से निकालने का अब क्या उपाय है ? समाज की गलतियों के कारण क्या वह सारी उम्र नरक के कीड़े की तरह गंदगी में पड़ी रहेगी ? पिछले कर्मों का तो अब भोग रही है और अब के कर्मों का आगे पता नहीं, क्या-क्या भोगेगी ?"

मैं––"उपाय तो है। हर भूल को सुधारने का उपाय होता है। बड़ी-बड़ी भूलें सुधर जाती हैं। भागो जैसी गलती तो अक्सर लड़कियां जवानी में कर बैठती हैं। उसको और अधिक बिगाड़ना और सुधारना उसके मां-बाप और समाज के हाथ में है।"

पड़ोसिन––"तो फिर बताओ अब वह क्या करे ? कहां जाय ?"

मैं––"देखो, सरकार ने ऐसी बहनों के कल्याण के लिए 'नारी-निकेतन' खोल रखे हैं।"

पड़ोसिन––"वहां क्या होता है ?"

मैं––"सोलह वर्ष से छोटी आयु की किसी लड़की को वेश्या का पेशा करने की इजाजत नहीं है। पर जो लड़कियां गुंडों के बहकावे में आकर घर से भाग खड़ी होती हैं और इस दलदल में

आ फंसती हैं, तो सरकार उन्हें लाकर यहां रखती है।"

पड़ोसिन—"यहां वे क्या करती हैं? कबतक रहती हैं?"

मैं—"पहले तो सरकार उनके घर का पता पूछकर उनके मां-बाप को सूचना देती है। यदि-मां बाप उसे अपने घर रखने को राजी हो जायं तब तो ठीक, नहीं तो सरकार उन्हें वहीं नारी-निकेतन, में रखती है।"

पड़ोसिन—"अच्छा! क्या ऐसी लड़कियों को उनके मां-बाप अपने घर में स्थान दे देते हैं?"

मैं—"हां, बहुत-से उदार और दयावान लोग जब यह देखते हैं कि बेचारी लड़की बहुत दुखी है और गुंडों के बहकावे में

स्वावलंबन की ओर

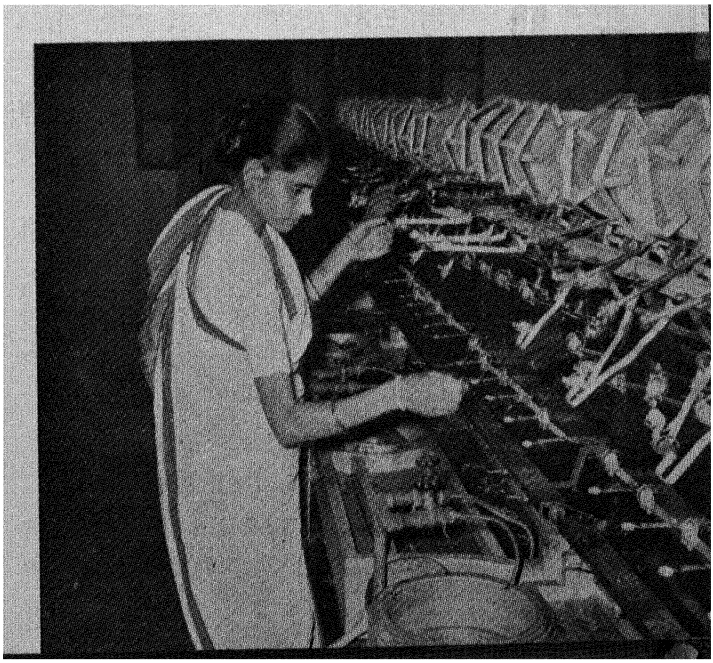

आ गई थी, तो वे उसे अपने घर में रख भी लेते हैं और फिर जल्दी-से-जल्दी उसका विवाह कर देने की कोशिश करते हैं।"

पड़ोसिन—"नहीं तो फिर सरकार उन्हें कबतक रखती है और उनसे क्या करवाती है ?"

मैं—"सरकार उन्हें कुछ हाथ का काम सिखाती है। सिलाई कढ़ाई, बुनना, अंबर चर्खा चलाना।"

पड़ोसिन—"अच्छा, अब समझी। ये सब चीजें इसलिए सिखाते हैं, जिससे वे कुछ कमाने योग्य हो जायं।"

मैं—"हां, ऐसे काम जिनसे वे प्रतिष्ठा और सम्मान के साथ कमाई कर सकें। इनके अलावा उन्हें थोड़ा-थोड़ा पढ़ाया-लिखाया भी जाता है। सफाई रखना, खाना बनाना, अचार, मुरब्बे डालना, खाने की चीजों को हवा-बंद डिब्बों में बंद करना, निवाड़ और दरी बुनना, साबुन बनाना, बटुए बनाना, थैले बनाना, ऐसे बहुत-से काम सिखाये जाते हैं। मिट्टी के बर्तनों पर चित्रकारी करना, खिलौने बनाना जैसे कलात्मक कार्य करके उनको बहुत आनंद अनुभव होता है, साथ ही पैसे बन जाते हैं।

पड़ोसिन—"हां, इन सब कामों के जरिए तो वे अपनी गुजर-बसर के लायक कमा ही सकती हैं।"

मैं—"इसके अलावा उन्हें वेश्यावृत्ति की बुराइयां बताई जाती हैं। कथा-कहानियों, नाटकों, फिल्मों द्वारा उनका नैतिक स्तर भी ऊंचा उठाने की कोशिश करते हैं।"

पड़ोसिन—"हां, ठीक है, इससे उनका मनोरंजन-का-मनोरंजन हो जाता है और उनके मन के भाव भी पलट जाते हैं।"

मैं—"उनके भाव यहांतक पलट जाते हैं कि फिर वे कसम खा लेती हैं कि ऐसा गंदा पेशा आगे वे कभी नहीं करेंगी। या तो

मेहनत करके कमायेंगी या फिर शादी करके गृहस्थ की तरह रहेंगी।"

पड़ोसिन—"लेकिन बहन, उनसे शादी कौन करेगा ?"

मैं—"बहुत-से समाज-सुधारक नारी का उद्धार करने के लिए शादी करने को तैयार हो जाते हैं। जिनकी शादी नहीं होती, वे फिर वहीं निकेतन में काम करती हैं और खाती हैं।"

पड़ोसिन—"उन्हें अपनी बनाई चीजें बेचने में दिक्कत नहीं होती ?"

मिट्टी के खिलौने बनाने की शिक्षा

मैं—"बहुत-सी लड़कियां तो इतनी आत्म-निर्भर होती हैं कि सबकुछ अपने-आप कर लेती हैं, पर जो स्वावलंबी नहीं हो पातीं, उन्हें सरकार सहायता देती है।"

पड़ोसिन—"सरकार क्या उनकी चीजें बिकवा देती है?"

मैं—"हां, सरकार ने कई ऐसे केंद्र खोल रखे हैं जहां चीजें सिखाई भी जातीं हैं और आर्डर भी लिये जाते हैं। केंद्र उन लड़कियों से काम कराते हैं और फिर ग्राहकों को चीजें देकर उनसे मजदूरी लेकर लड़कियों को दे देते हैं।"

पड़ोसिन—"जिसे आर्डर देना हो, उसे ही जाना पड़ता है क्या?"

मैं—"कुछ लोग तो वहीं जाकर आर्डर दे आते हैं, बाद में चीजें ले आते हैं। बहुत-सी दुकानें आर्डर दे देती हैं। प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र के अधिकारी-गण बीच-बीच में दुकानों से संपर्क करते रहते हैं।"

पड़ोसिन—"प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र क्या होते हैं?"

मैं—"जहां चीजें बनानी सिखाई जायं और साथ में उन्हें बेचने का भी प्रबंध हो उन केंद्रों को 'प्रशिक्षण और उत्पादन-केंद्र' कहते हैं।"

पड़ोसिन—"बहन, जबसे हमारा देश स्वतंत्र हुआ है तब-से हमारी सरकार बालकों और स्त्रियों के कल्याण के लिए बराबर कुछ-न-कुछ कर रही है। सुना है, जब हिंदुस्तान का बंटवारा हुआ तब सरकार ने सैकड़ों सताई हुई स्त्रियों को सहारा दिया था।"

मैं—"हां बहन, वह भी एक दर्दभरी कहानी थी।"

पड़ोसिन—"अच्छा, उनके लिए भी ऐसे ही केंद्र खोले गये

थे, जैसे ये नारी-निकेतन ? सुना है कि बहुत-सी औरतों को तो उनके आदमियों ने इसलिए साथ नहीं रखा कि वे मुसलमानों के साथ रह आई थीं । क्या सरकार ने उनके लिए भी केंद्र खोल रखे हैं !"

मैं—"हां बहन, सरकार ने उनके लिए बहुत सारे केंद्र खोले थे । जिनके पतियों ने उन्हें नहीं रखा, उनके मां-बाप का पता चलाया, उनसे बातचीत की । कुछके मां-बाप अपनी लड़कियों को ले गये, कुछके नहीं ले गये । कुछके संबंधियों का पता ही नहीं चला।"

पड़ोसिन—"वे वहीं केंद्र में रह गई होंगी ?"

मैं—"हां, वे वहीं केंद्र में रह गईं। सरकार पहले तो उन्हें मुफ्त राशन बांटती रही । बाद में राशन बंद करके, प्रति व्यक्ति के हिसाब से रुपये देने लगी । उस रुपये से औरतें काम-काज

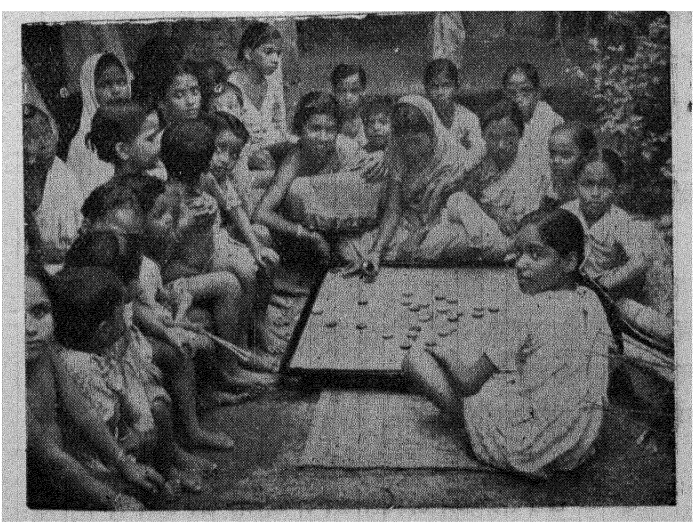

सीखती हैं और अपना गुजारा चलाती हैं।"

पड़ोसिन—"और जिनके बच्चे हैं?"

मैं—"प्रति बच्चे के हिसाब से उन्हें रुपये मिलते हैं और बच्चों के लिए वहीं आश्रम खोल दिये गये हैं।"

पड़ोसिन—"सुना है, सरकार ने उनके लिए मकान भी बना दिये हैं? क्या यह सच है?"

मैं—"हां, यह सच है। उनके रहने के लिए छोटे-छोटे क्वार्टर बना दिये हैं। जो स्वयं कमा सकती हैं, वे अपने क्वार्टरों में चली गईं। बाकी वहीं केंद्र में रहती हैं।"

पड़ोसिन—"बहुत-सी लड़कियों को वहां गर्भ रह गया था। उनका क्या हुआ?"

मैं—"उनको पहले तो इन केंद्रों में रखा गया। फिर उचित समय पर अस्पताल को व्यवस्था की गई। बाद में उनको मां-बाप के पास भेज दिया। कुछका विवाह किया, और कुछ वहीं केंद्र में रहने लगीं।"

पड़ोसिन—"क्या अस्पताल में उनकी ठीक से देखभाल होती थी? उनका कोई घरवाला तो पास में था नहीं।"

मैं—"घरवाला पास में नहीं था तो क्या हुआ! आजकल अस्पतालों में ऐसी व्यवस्था है कि चाहे जच्चा-बच्चा अकेले रहें, चाहे कोई साथ रहे, उन्हें किसी तरह का कष्ट नहीं होता। सब काम ठीक से हो जाता है। नर्सें होती हैं, लेडी डाक्टर होती हैं, वे सब सम्भाल लेती हैं।"

पड़ोसिन—"खाने की व्यवस्था तो घरवाले ही करते होंगे।"

मैं—"अब बहुत-से अस्पतालों में खाना भी वहीं से मिलता है और कपड़ा और बिस्तरा भी वहीं का इस्तेमाल करना पड़ता

है। आशा है कि धीरे-धीरे सारे अस्पतालों में यही व्यवस्था हो जायगी।"

पड़ोसिन—"बहन, अब तो बालकों और माताओं की सुख-सुविधाओं के लिए कितनी तरह की व्यवस्थाएं हो गई हैं। पहले तो अस्पताल के नाम से ही औरतें घबराती थीं।"

मैं—"हां, बहन पर अब वह बात नहीं रही। औरतें और बच्चे समझने लगे हैं कि सरकार जो कुछ कर रही है, उनके भले के लिए है।"

पड़ोसिन—"अब यह सबको जान लेना चाहिए कि अगर जीवन में कभी भूल हो जाय तो सरकार उनकी रक्षा करती है। उन्हें समाज की मार से बचाने के लिए शरण देती है और उन्हें फिर से समाज का एक अंग बनाने की भरसक कोशिश करती है।"

मैं—"अच्छा बहन अब चलूं। अंधेरा हो गया। नमस्ते।"

: १३ :

उपसंहार

ग्यारह साल पहले हिन्दुस्तान आजाद हो गया ! अपने ही देशवासियों ने राजकाज संभाला। सबका भला कराने की योजनाएं बनाई। बहन-भाइयों के, बाल-बच्चों के, विकास की योजनाएं गढ़ीं। ऐसी बहनों का भला किया, जिन्हें समाज ने ठुकरा दिया था। ऐसी बहनों को अपने पांव पर खड़ा किया, जिनका गरीबं ने हाल बेहाल कर रक्खा था। ऐसी बहनों को आश्रय दिय जिनकी बदकिस्मती ने उनकी मांग का सिंदूर पोंछ दिया था ऐसे बच्चों को जीवन-दान दिया, जिन्हें समाज पाप की औलाद कहता था और मर जाने को मजबूर करता था। ऐसे बच्चों का भला किया, जो अभागे थे, जिनके मां-बाप में से कोई भी न रहा था। ऐसे बच्चों का उद्धार किया, जो बुरी बातें सीख गए थे। ऐसे बच्चों को कामकाजी बनाया, जिन्हें कुदरत ने लंगड़ा, लूला, अंधा और पागल बना दिया था।

पर महिलाओं और बच्चों के उद्धार की योजनाओं और विकास का काम छोटा नहीं है। बहुत बड़ा है। आखिर सरकार कहां तक करेगी ? कितना करेगी ? सच बात यह है कि कोई भी बड़ा काम बिना जनता के सहयोग के पूरा नहीं हो सकता। सरकार और जनता दोनों मिल कर विकास-कार्यों को करेंगे तो जल्दी ही हमारा देश खुशहाल हो जायगा और घर-घर आनंद और खुशी का राज्य हो जायगा।